संजय की कलम से ..

दीपावली का रहस्य

बड़े आश्चर्य की बात है कि दीपावली का त्योहार भारतवर्ष में बहुत ही महत्त्वपूर्ण त्योहार माना जाता है। इसे हम सभी भारतवासी हर वर्ष बड़ी ही धूमधाम से मनाते आये हैं। लेकिन हर वर्ष त्योहार मनाते हुए भी हम जिस बात की कामना रखते हैं कि हमारे घरों में लक्ष्मी आयेगी, जिसलिए हम अपने घरों की सफाई करते, दीपक जलाते तथा पूजन कर लक्ष्मी का आह्वान करते हैं। परन्तु इतना नहीं समझते कि एक तरफ तो लक्ष्मी का वाहन उल्लू दिखाया जाता है और दूसरी तरफ दीपक जलाकर लक्ष्मी का आह्वान करते हैं परंतु विचार करने की बात है कि जब उल्लू को रोशनी में कुछ दिखाई ही नहीं देता तो लक्ष्मी आएगी कैसे?

अब परमपिता परमात्मा शिव हम सभी को दीपावली का सच्चा-सच्चा रहस्य समझाते हैं कि हे वत्सो! तुम द्वापर से लेकर हर वर्ष दीपावली मनाते आये हो। लेकिन बजाय संपन्न होने के और ही कंगाल होते आये हो। परमपिता परमात्मा शिव कहते हैं, बच्चो, घरों की सफाई करना या दीपक आदि जलाना तो साधारण सी बात है। कलियुग के अंत और सतयुग के आदि के बीच के वर्तमान कल्याणकारी पुरुषोत्तम संगमयुग पर यदि वास्तविक लक्ष्मी को बुलाना चाहते हो या श्री लक्ष्मी और श्री नारायण के राज्य की स्थापना करना चाहते हो तो तुम्हें लक्ष्मी के समान दैवी गुण अपने जीवन में धारण करने होंगे। इसी के लिए परमपिता परमात्मा हमें समझाते हैं कि हे वत्सो, तुम्हारी आत्मा में 63 जन्मों से पाँच विकारों रूपी मैल चढ़ा हुआ है। जब तक तुम बच्चे अपने आत्मा रूपी घरों से इन पाँच विकारों रूपी मैल को नहीं निकालते अर्थात् जब तक आत्मा को ज्ञान प्रकाश नहीं मिलता तब तक श्री लक्ष्मी और श्री नारायण का राज्य स्थापन नहीं हो सकता और सही अर्थों में दीपावली नहीं हो सकती है।

'दीपावली' शब्द का अर्थ है दीपों की अवली (पंक्ति)। इस पर्व पर लक्ष्मी के आह्वान के लिए दीप जलाकर खूब रोशनी की जाती है। दीपक के स्थिरतापूर्वक जगने के लिए उसमें निरंतर घी या तेल का होना ज़रूरी है। इसी प्रकार मनुष्यात्मा की आत्मिक ज्योति जगते रहने के लिए भी उसमें ईश्वरीय ज्ञान का निरंतर बने रहना ज़रूरी है। जब बुझा हुआ दीपक किसी जगे हुए दीपक के संपर्क में आता है तो वह भी जग उठता है। ठीक इसी तरह ही आत्मा भी सदा जागती-ज्योति परमपिता परमात्मा के संपर्क में आने से जग जाती है।

(शेष ..पृष्ठ 5 पर)

अमृत-सूची

- श्वासों की सफलता *(सम्पादकीय)*.................. 4
- प्रश्न हमारे, उत्तर दादी जी के..6
- ब्रह्माकुमारी ऊषा जी के साथ पवित्रता संपन्न जीवन 8
- गृहस्थ में रहते मुक्ति 12
- तुलना न कर देवतुल्य बनें 14
- सूचना 16
- विश्व का अनोखा दरबार 16
- जीभ पर बन्धन................. 17
- मैं डिप्रेशन से बाहर आ गया .20
- भगवान का आदेश 21
- मुझे साथी मिल गया..........23
- भक्ति पूरी हुई 24
- चश्मा पहनो, चमत्कार देखो .27
- पवित्रता का उपहार *(कविता)* 29
- सचित्र सेवा समाचार......... 30
- क्रोध पर विजय 32
- ग्लोबल हॉस्पिटल में..........34

नये सदस्यता शुल्क

भारत	**वार्षिक**	**आजीवन**
ज्ञानामृत	80 /-	2,000/-
वर्ल्ड रिन्युअल	80/-	2,000/-
विदेश		
ज्ञानामृत	750 /-	8,000/-
वर्ल्ड रिन्युअल	750/-	8,000/-

शुल्क केवल '**ज्ञानामृत**' अथवा '**द वर्ल्ड रिन्युअल**' के नाम से ड्राफ्ट या मनीऑर्डर द्वारा भेजने हेतु पता है- संपादक, ओमशान्ति प्रिंटिंग प्रेस, ज्ञानामृत भवन, **शान्तिवन- 307510 (आबू रोड) राजस्थान।**

- शुल्क के लिए सम्पर्क करें -
09414006904, 09414154383

सम्पादकीय ..

श्वासों की सफलता

आज का मानव बहुत समझदार है। वह ऐसे कार्य में अपना धन निवेश करना चाहता है जहाँ एक पैसे से दो बन जाएँ अर्थात् मूलधन भी सुरक्षित रहे और कमाई भी होती रहे। इसके लिए विभिन्न लोगों से सलाह-मशवरा करता है, विभिन्न संचार माध्यमों से जानकारियाँ हासिल करता है और अधिकतम लाभ वाले उपक्रम को चुनकर उसी में धन लगाता है। लेकिन जिस नश्वर धन को बढ़ाने के लिए मानव इतना चिन्तित है, उससे भी बढ़कर एक अन्य धन उसके पास है, क्या उसके बारे में उसे कोई चिन्ता नहीं है? क्या उस तरफ उसका कोई ध्यान नहीं है? क्या उस धन को नष्ट होते देखकर भी वह यूँ ही हाथ पर हाथ धरे बैठा हुआ है? वह धन है श्वासों का धन। श्वास जो लाख कोशिश करने पर भी बढ़ाई नहीं जा सकती।

इतिहास में कहानी आती है एक राजा की। एक बार उसके मंत्री का प्रिय पुत्र बीमार पड़ गया। कई वैद्यों से इलाज कराने पर भी पुत्र ठीक नहीं हुआ। एक दिन मंत्री, दरबार में ही पुत्र की चिन्ता में निमग्न हो गया। राजा उसके चिन्तित चेहरे को देख द्रवित हो उठा और बोला, मुझसे जो माँगो मैं दूँगा पर चिन्ता की लकीरें तुम्हारे चेहरे पर मैं देख नहीं सकता। मंत्री ने धीरे से कहा, महाराज, मेरे पुत्र को श्वासों का दान दे दो, उसकी साँस लगभग उखड़ चुकी है, वह केवल कुछ घंटों का ही मेहमान है। राजा पीछे हट गया और अपना मुँह ऊपर की ओर करके विधाता को निहारने लगा।

योगबल से बढ़ते हैं श्वास

सच है, राजा हो या योद्धा, साँसों के आगे किसी का ज़ोर नहीं चलता, यह तो वह कीमती खज़ाना है जो योगबल से कुछ बढ़ाया जा सकता है पर भोगी तो इस खज़ाने को समय से पहले ही बर्बाद कर लेता है। हम अपने बारे में क्या विचार रखते हैं? हम भोगी हैं या कर्मयोगी? हम एक-एक श्वास में पुण्य की पूंजी अर्जित कर उसे आबाद कर रहे हैं या बिना पुण्य अर्जित किए मूलधन को भी नष्ट कर रहे हैं? याद रखिए, गया हुआ धन लौट सकता है परंतु गये हुए श्वास वापस आ नहीं सकते। गये सो गये, समाप्त हो गये, काल की भेंट चढ़ गये। इसलिए संभालिए अपने श्वासों को, लगाइये पुण्यों के अर्जन में।

पुण्य अर्जन के लिए, श्वासों को निवेश करने का कारगर उद्योग है ईश्वरीय स्मृति और ईश्वरीय ज्ञान का मनन। ज्ञान का एक-एक रत्न अरबों के बराबर है। यदि आप हर श्वास के साथ ज्ञान के रत्नों का मनन करते रहो तो आपकी आध्यात्मिक पूंजी कई गुणा हो जायेगी।

कार्य की गुणवत्ता कैसी है?

कई लोग कहते हैं, हम घर-परिवार के लिए कमा रहे हैं, सारा दिन व्यस्त रहते हैं, खाली तो बैठे नहीं हैं, आप सांस सफल करने की बात करते हैं, हमें तो सांस लेने की फुर्सत ही नहीं है।

सांस लेने की फुर्सत ना होना या सांसों को व्यर्थ गंवाना, दोनों ही अति के सूचक हैं। और फिर यह भी तो ज़रूरी है कि हम श्वास रोककर जिस कार्य को कर रहे हैं, उसकी गुणवत्ता कैसी है। यदि अधिक कमा भी लिया चोरी, हेराफेरी, बेईमानी, धोखाधड़ी से, किसी का अपमान करके, मिलावट करके, सरकार की आँखों में धूल झोंक कर, लूटमार करके, किसी की जेब काटकर, किसी को तंग करके, सीनाज़ोरी करके तो भी क्या हुआ? ऐसे धन का सदुपयोग तो होने से रहा। वह जाएगा क्लबों में, मदिरा में, जुए में, वेश्यावृत्ति और नाच-गाने में, घर के ऐशो-आराम में, यार-

दोस्तों की बुरी संगत में, ऊँचे-ऊँचे महल-माडियाँ बनाने में व सजाने में। दान नहीं, पुण्य नहीं, धर्म नहीं, सहयोग देने में असमर्थता, धार्मिक व सामाजिक कार्यों से जी चुराना, अनेकों की बद्दुआओं से बोझिल, नास्तिकता में ग्रस्त, एक दिन तो क्या एक पल भी भगवान का धन्यवाद नहीं – अवश्य ही ऐसा जीवन कर्मों के बोझ से उबर नहीं पाएगा।

कहते हैं कि एक बार एक जौहरी, कुछ हीरे-जवाहरात लेकर राजा के दरबार में उपस्थित हुआ। हीरों की अनुपम कलाकृति देख राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने मंत्री को आदेश दिया कि वह जौहरी को मुँहमांगा इनाम दे। मंत्री ने कहा, मुझे यही इनाम उचित लगता है कि इसे जेल में डाल दिया जाये। सभा में सन्नाटा छा गया। राजा ने कहा, खज़ाना मेरा है मंत्री जी, आपको देने में ईर्ष्या क्यों हो रही है? मंत्री बोले, महाराज, क्षमा करें, इस जौहरी जैसी तीक्ष्ण बुद्धि मिलना दुर्लभ है, इसने इतनी तीक्ष्ण बुद्धि को मात्र ये पत्थर परखने में लगा दिया, क्या यह पत्थर परखने की विद्या इसे विकर्मों के खाते से मुक्त कर सकेगी? जिस तीक्ष्ण बुद्धि का उपयोग परमात्मा को जानने, उनसे संबंध जोड़कर शक्तियाँ प्राप्त करने में करना चाहिए था, उसे पत्थर तराशने में ही नष्ट कर दिया गया। क्या इसे छोटा-सा अपराध समझा जाए? बुद्धिमान जौहरी ने यह सुन अपनी भूल स्वीकार की। राजा ने भी मंत्री की बात की खूब सराहना की।

अविनाशी बड़प्पन

सच है, **भाग्यशाली वे हैं जो अपने मन को परमात्मा में लगाते हैं। बड़ा जौहरी, संत, नेता, धनी आदि बनना तो सांसारिक बड़प्पन है, मिटने वाला बड़प्पन है।** अलौकिक और अविनाशी बड़प्पन तो अपने अहंकार को मिटाकर मन को प्रभु में लगा देने में है। सांसारिक अल्प सुख और अल्प ज्ञान में इतराने के बजाय, सदा सुख स्वरूप आत्मा को पहचानने में ही जीवन की सफलता है। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय के संस्थापक पिताश्री प्रजापिता ब्रह्मा का भी हीरे-जवाहरात का बड़ा उन्नत व्यापार था। पर जन्म-जन्म की भक्ति के फलस्वरूप परमपिता परमात्मा ने जब उन्हें आने वाली सतयुगी दुनिया का साक्षात्कार कराया और 'ततत्वम्' का वरदान दिया तो उन्हें भी हीरे, कांच के टुकड़े नजर आने लगे। इसी ज्ञानयुक्त स्थाई वैराग्य ने उनका सब कुछ त्याग करवा कर प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय की नींव डलवाई। इस विद्यालय द्वारा आज विश्व के कोने-कोने में मानव की नैतिक, आध्यात्मिक सेवा हो रही है। ठीक ही कहा गया है,

श्वास-श्वास सिमरण करो,
श्वास व्यर्थ ना जाए।
ना जाने किस श्वास में
अंत घड़ी आ जाए।।

– ब्र.कु. आत्म प्रकाश

दीपावली का रहस्य..पृष्ठ 3 का शेष

जैसे दीपक के जगने से आसपास से अंधकार स्वत: ही मिट जाता है वैसे ही आत्मा की ज्योति जगने से भी अज्ञान-तिमिर भाग जाता है। एक दीपक के जगने पर अन्य अनेक दीप भी उसके संपर्क में आकर जगते हैं और इस प्रकार दीपमाला जग कर दीपावली उत्सव होता है। यह वास्तव में एक द्वारा अनेकानेक आत्माओं के जगने का स्मरणोत्सव है। कलियुग के अंत में जब चहुँ ओर अज्ञानान्धकार छाया हुआ होता है तब परमपिता परमात्मा शिव प्रजापिता ब्रह्मा को ज्ञान एवं योग द्वारा जागृत करके विश्व में उजाला करते हैं। यही सच्ची दीपावली है। अब इसी दीपावली की पुनरावृत्ति हो रही है। ❖

प्रश्न हमारे, उत्तर दादी जी के

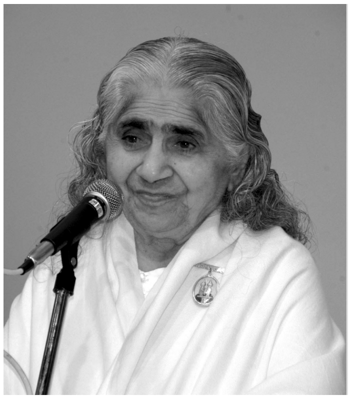

दिव्यबुद्धि के वरदान से विभूषित आदरणीया दादी जानकी जी, हर प्रकार के प्रश्नों के उत्तर देकर आत्मा को संतोष से भर देती हैं। बुद्धिवानों की बुद्धि बाबा ने उन्हें ऐसी कला प्रदान की है कि वे उलझे कर्मों की गुत्थियाँ सुलझाकर समाधानस्वरूप बना देती हैं। प्रस्तुत हैं भाई-बहनों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के दादी जानकी द्वारा दिये गये उत्तर ... – सम्पादक

प्रश्नः- पुरुषार्थ में सफलता के लिए योग के साथ क्या मनन करना भी ज़रूरी है?

उत्तरः- योग हम क्यों लगा रहे हैं, पूछो अपने से? योग लगा रहे हैं दिव्य बुद्धि दाता के साथ। यदि बुद्धि मेरी दिव्य नहीं है तो योग क्या है, क्या मैंने योग को समझा? योग सिर्फ (थ्योरी रूप में) समझने के लिए नहीं है। परन्तु जिसकी हम संतान हैं, उसके साथ हमारे सर्व संबंध हैं। उन सर्व संबंधों की प्राप्ति मुझे योग में होनी चाहिए। सिर्फ शान्ति मुझे मिले, इसलिए योग नहीं लगा रही हूँ। शान्ति तो मेरा स्वधर्म है। अशान्त होने की आवश्यकता नहीं है। बाबा को कहेंगे, बाबा, मुझे शान्ति दो। बाबा कहेगा, बच्ची, शान्ति तो तुम्हारा स्वधर्म है। फिर प्रश्न है कि बाबा को क्यों याद करते हैं, तो इसके लिए बाबा कहते, बाप समान बनो। अंदर विदेही रहने की गुप्त प्रैक्टिस हो तो बाबा से सर्व संबंधों की शक्ति मिलती है जिससे महसूस होता है, मैं विजयी बनती जा रही हूँ, सफलता मिलती जा रही है। ऐसे नहीं लगता, सफलता कब होगी, अभी तक विजय नज़र नहीं आ रही है। यदि विजय नज़र नहीं आती तो उसका सूक्ष्म कारण है, सर्व संबंधों की शक्ति अंदर जमा नहीं है और वो काम भी नहीं कर रही है। दूसरा, जो हमारी वृत्ति और दृष्टि है, ज्ञान के आधार से, उसकी चेकिंग की आवश्यकता है, तभी सफलता है। सूक्ष्म वृत्ति-दृष्टि से समझ लिया कि मैं मेहमान हूँ और महान आत्मा हूँ। शुरू-शुरू में जब कई बार छोटी-सी भूल भी करते थे तो बाबा कहता था, बच्चे, तुम योगयुक्त नहीं हो और हम सचमुच बाबा की इस शिक्षा को महसूस करते थे क्योंकि योगयुक्त माना युक्तियुक्त। योगयुक्त माना पहले ज्ञानयुक्त। बाबा से संबंध पूरा है तो हर बात में युक्तियुक्त होने चाहिएँ। हर बात के राज़ को पूरा समझा हुआ होना चाहिए। मूँझने या घबराने वाला चेहरा हुआ माना राज़ को समझा नहीं है। योग माना बाबा से जो प्राप्ति या संबंध है, उसकी समझ और वह समझ काम में आए। पुरुषार्थ में सफलता का अर्थ है कि बाबा हमें साथ दे रहा है पर हम भी अटेन्शन से साथ ले रहे हैं। सूक्ष्म अभिमान को छोड़, देह के भान से परे रहकर अंदर की स्थिति हमें साथ दे रही है।

प्रश्नः- हम योगाभ्यास अच्छे-से करते हैं परंतु फिर भी व्यवहार में आते कई बातें ऊपर-नीचे हो जाती हैं, बोल ऐसा निकल जाता है, तो क्या इसे योग में सफलता की कमी कहेंगे?

उत्तरः- अभिमान हमें स्वीट बनने नहीं देता। संबंध में आते दूसरे की कमी जो बहुतकाल से देखी है ना, हम उसे भुलाते नहीं हैं। उसी अनुसार व्यवहार करते हैं, यह हमारी कमी है। जैसे मैं कहूँगी, मैं 10 साल से या 5 साल से इनके साथ

रहती हूँ, मैंने इनको देखा है। देखा है तो क्या देखा है? मैंने भी दादियों को कई वर्षों से देखा है। यदि मैं किसकी भी कमी देखती हूँ, चाहे 30 साल वाला या दो साल वाला या 10 दिन वाला, कमी देखने की आदत है तो रूहानियत, सच्चाई, प्रेम मेरे पास होगा ही नहीं। मुझे सच्चाई, रूहानियत, प्रेम से संपन्न और संपूर्ण बनना है। और सब भी संपन्न बन जाएँ, यही मेरी भावना हो। इसके अलावा और कुछ सोचना, देखना उससे पाप कटेंगे नहीं पर पाप बनेंगे। पुराने पाप याद से कटेंगे। हम 74 साल से इकट्ठे हैं पर किसी की भी कमी मेरे को पता ही नहीं है। न पता रखने की ज़रूरत है। पता रखने से और ही पाप बन जाते हैं। भूल दूसरे की, देखूँ मैं, वह मेरे में आ जायेगी। फिर मेरे व्यवहार में न रूहानियत रहेगी, न प्रेम, न सच्चाई।

प्रश्नः- जो बात जैसी है, वैसी दिखाई तो पड़ती है, इस अनुसार झूठी बात, झूठी तो दिखाई देगी ही, फिर क्या करें?

उत्तरः- क्यों दिखाई देगी? ये आँखें किसलिए हैं, ब्रह्मा बाबा की आँखें किसलिए हैं? मैंने शरीर दिया बाबा को, तो आँखें किसलिए हैं? जब आप योग में बैठते हो तो सबको कैसे देखते हो, उस समय देखेंगे क्या कि यह ऐसा है, यह वैसा है। नहीं देखेंगे ना। फिर कहते हैं, उस समय तो वह अच्छे से बैठे हैं, तो अच्छे ही दिखेंगे। जब आप अपने को अच्छा देखेंगे तो अन्य भी आपको अच्छे दिखाई देंगे। सन् 1981 में दीदी हमारे पास लंदन आई थी। मुझे बीमारी के कारण ब्रश करना भी मुश्किल था। फिर भी चेहरे पर खुशी थी। अंदर चिन्तन था, मैं आत्मा बाबा की हूँ, लगता नहीं था, कैसे करूँ, सब हो जाता था। बाबा की मदद मिल जाती थी। जब बाबा दृष्टि देता है, उस घड़ी हमारी सबकी स्थिति कितनी अच्छी होती है। मैं भी सबको बाबा जैसी दृष्टि से देखूँ – ये सब बाबा के बच्चे हैं, समर्पित हैं, ब्राह्मण हैं। मेरे को एक-एक के लिए रिस्पेक्ट हो। चमड़ी को देखने की खराब आदत है। जब तक आत्मा को देखने की आदत नहीं है, तो समझो आत्म-दृष्टि नहीं बनी है। चलते-फिरते, खाते-पीते उसका चेहरा और नाम-रूप याद आयेगा। फिर सोचो, मेरा योग कैसा है? योग क्या करती हूँ? उससे मेरा क्या कल्याण है? क्या वो घड़ी मेरी सफल है? बाबा कहता, समझ के आधार से वैराग चाहिए। यह मेरे काम की बात नहीं, मुझे नहीं देखनी है। जरूरत ही नहीं है, फुर्सत ही नहीं है।

प्रश्नः- किसी के साथ संबंध ठीक नहीं, उसका कारण और परिणाम क्या है?

उत्तरः- अगर किसी के साथ संबंध ठीक नहीं तो समझ की कमी है। उसका योग पाई भी नहीं लग सकता। जिसका एक के साथ भी थोड़ा शत्रुता भाव है, वो आत्मा अपनी शत्रु है, वो भगवान को अपना मित्र बना नहीं सकती है। किसी के साथ शत्रुता हो, भले मुख में ना हो, मन में हो, दिल में उसका दर्द हो, उसका नाम सुनते ही घबराहट हो जाये, उसका मुँह देखने से घबराहट हो जाए, ऐसा कोई महान योगी हो तो हाथ उठाए। कोई नहीं है ना।

प्रश्नः- किसी से शत्रुता ना भी हो पर व्यवहार काम चलाऊ हो, क्या तब भी योग नहीं लगता?

उत्तरः- यह भी क्या है? मैं आपसे काम चलाऊ होऊँगी तो बाबा भी मेरे साथ काम चलाऊ होगा। मुझे डर लगता है, मैं जैसा इसके साथ करूँगी, बाबा भी मेरे साथ ऐसा ही करेगा। बाबा का जितना मेरे प्रति प्यार है, जितना मुझे दे रहा है, मैं अंदर से सोचूँ, इनको भी इतना ही मिले तो बाबा गुप्त मेरे से प्यार करेगा कि बच्ची का दिल तो साफ है ना। दया दृष्टि तो इसमें है ना। दया के बिना लव कैसे हो सकता है? दया का अंश नहीं है तो अपनी उन्नति के लिए अपने पर भी दया नहीं करते। अपने प्रति भी बड़े कठोर हैं। ❖

ब्रह्माकुमारी ऊषा जी के साथ पवित्रता संपन्न जीवन की दास्तान

• ब्रह्माकुमार रमेश शाह, मुंबई (गामदेवी)

प्रस्तुत लेख द्वारा ब्रह्माकुमारी ऊषा जी के साथ के 50 सालों के अनुभवों को, गागर में सागर की तरह समाकर उन्हें लौकिक परिवार तथा दैवी परिवार की ओर से ईश्वरीय स्नेह संपन्न श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

बात सन् 1960, जनवरी मास की है, तब मुंबई में वाटरलू मेन्शन में सेवाकेन्द्र था। दादी पुष्पशांता मुख्य संचालिका थीं। वह भोग लेकर बाबा के पास गईं तो सूक्ष्मवतन में शिवबाबा ने उन्हें हमारे घर में शादी के उत्सव का दृश्य दिखाया। उस आधार पर उन्होंने मेरी लौकिक माता शांता माता को उलाहना दिया कि आपके घर शादी का कोई बड़ा कार्यक्रम होने वाला है और आपने हमें बताया ही नहीं। शांता माता ने कहा, मुझे भी मालूम नहीं। बाद में शांता माता ने मुझसे पूछा कि क्या आपके विवाह की बात चल रही है? मैंने कहा, मुझे तो कुछ मालूम नहीं। और बात ऐसे ही रुक गई परंतु मेरे मन में आया कि शिवबाबा ने भोग में कोई दैवी संकेत दिया है।

उस समय मैं मुंबई में माधव बाग स्थित श्रीमत भगवद्गीता पाठशाला से संलग्न था जिसके आधारस्तंभ आदरणीय पांडुरंग शास्त्रीजी थे जिन्हें हम प्यार से शास्त्री जी या दादा भी कहते थे। सन् 1960, अप्रैल में एक रविवार को शास्त्री जी ने मुझे कहा कि एक ऊषा नाम की बहन अपनी पाठशाला में आती है, आप उन्हें जानते हैं? मैंने कहा, मैंने देखा है लेकिन कभी बातचीत नहीं की। तब शास्त्री जी ने कहा, ऊषा बहन प्रतिदिन प्रात: 4 बजे उठकर पतंजलि योग करती है, सामने श्रीकृष्ण का चित्र रखकर। थोड़े समय से उसको योग में विचित्र अनुभव हो रहे हैं, उसके कमरे की खिड़की के पास से एक व्यक्ति श्रीकृष्ण के चित्र पर रोशनी डालता है जिससे श्रीकृष्ण का चित्र गायब हो जाता है और एक व्यक्ति का चित्र आ जाता है। ऊषा बहन इसका रहस्य जानने के लिए मेरे पास आई। मैंने ऊषा जी को बताया कि इस दृश्य के द्वारा परमात्मा उन्हें संदेश देना चाहते हैं कि वह उस व्यक्ति के साथ विवाह करे तो जीवन बहुत सुखी हो जायेगा। शास्त्री जी ने आगे मुझे बताया कि ऊषा द्वारा वर्णित उस चित्र से मिलते-जुलते दो व्यक्ति गीता पाठशाला में आते हैं। रविवार को शास्त्री जी ने उस दूसरे व्यक्ति की तरफ इशारा करके ऊषा से पूछा तो ऊषा ने कहा, यह वह व्यक्ति नहीं है। फिर मुझे दिखाकर ऊषा से पूछा तो ऊषा ने कहा, यही वह व्यक्ति है जिनका चित्र मेरे सामने योग में आ जाता है। फिर शास्त्री जी ने मेरे सामने विवाह का प्रस्ताव रखा और कहा कि आप ऊषा से मिलो। मैंने कहा, मुझे मिलने की ज़रूरत नहीं क्योंकि मेरे बारे में आप ज्यादा अच्छा निर्णय कर सकते हैं अर्थात् मेरी हाँ है।

फिर दोनों परिवारों के बड़ों की आपस में बात हुई। एक दिन ऊषा अपनी सखी के साथ मेरे ऑफिस में आई व अन्य बातें करने के बाद मुझसे सीधा प्रश्न पूछा कि क्या आप पवित्र जीवन व्यतीत करने को तैयार हैं? मैंने एक सेकंड में कहा, हाँ, परंतु एक बात है कि भक्ति मार्ग में वचन भंग का सौ गुणा दंड धर्मराजपुरी में मिलता है इसलिए हम तीन साल के लिए निर्णय लेते हैं, बाद में पुन: तीन साल के लिए निर्णय लेंगे। इस प्रकार पवित्रता हमारे जीवन का आधारस्तंभ बन गया। उस समय तक ऊषा को ब्रह्माकुमारी संस्था का कोई ज्ञान नहीं था और पवित्रता का यह संकल्प उसने गीता आदि के अभ्यास द्वारा ही कहा था

और मैंने माना था। जब हम बाबा के बन गये तो पवित्रता का यह व्रत आजीवन बन गया।

सत्ताइस नवंबर, 1960 को माधवबाग में लक्ष्मीनारायण मंदिर के सामने मैदान में हमारा लौकिक विवाह संपन्न हुआ। अठाइस नवंबर, 1960 को मेरी लौकिक माता हम दोनों को ब्रह्मा बाबा से मिलाने के लिए लेकर गई। ब्रह्मा बाबा उस समय मुंबई में ही थे। बाबा को देखते ही ऊषा चौंक पड़ी कि यह तो वही व्यक्ति है जो प्रात: 4 बजे खिड़की से कृष्ण के चित्र पर रोशनी डाला करते थे जिससे श्रीकृष्ण का चित्र रमेश के चित्र में बदल जाता था। 'गीता का भगवान कौन?' विषय पर ब्रह्मा बाबा के साथ ऊषा की तीन-चार बार बहस हुई। बाद में ब्रह्मा बाबा ने कहा कि आप और रमेश आबू आना, वहाँ इस विषय पर बहस करेंगे। बाद में मई 1961 में हम आबू गए, करीब 12 दिन वहाँ रहे। विदाई देते समय ब्रह्मा बाबा पिछले दरवाज़े से निकल बरगद के पेड़ तक आए। विदाई के समय ब्रह्मा बाबा की आँखों में दो बूंद अश्रु के मोती जगमगाने लगे और उसी ने तीर के मुआफिक हम दोनों के हृदय को शिवबाबा का बना दिया।

मुंबई में सात दिनों के लिए प्रात: 5 बजे विशेष योग का कार्यक्रम वाटरलू मेन्शन सेवाकेन्द्र पर प्रारंभ हुआ। इस कार्यक्रम ने हम दोनों में ज्ञान के फाउंडेशन को मज़बूत कर दिया। राखी के त्योहार पर दादी निर्मलशान्ता की अध्यक्षता में राखी की सेवा करने की प्लैनिंग हुई। मैंने ड्रामा लिखा, शीर्षक था – 'प्रभु की खोज', ऊषा उसमें मुख्य नायिका थी जो प्रभु दर्शन की प्यासी थी और प्रभु मिलन के लिए आक्रंद करती थी। ऊषा ने इतना सुंदर अभिनय किया कि आधे से ज्यादा दर्शकों की आँखों से आँसू बहने लगे। ड्रामा के बाद दादी मेहमानों के साथ व्यस्त थी इसलिए दादी जी ने संदेश भेजा कि ऊषा को बोलो कि प्रवचन भी करे। ऊषा ने फौरन ही बहुत सुंदर प्रवचन किया। ऊषा बहन की यह विशेषता थी कि वह कभी भी ईश्वरीय सेवा के लिए ना नहीं कहती थी, ना शब्द उनकी डिवाइन डिक्शनरी में था ही नहीं। नवंबर, 1961 में ब्रह्मा बाबा मुंबई आए। रोज़ सुबह हम दोनों बाबा को लेकर गार्डन घूमने जाते तब बाबा से ज्ञान की अनेक गुह्य बातें सुनने को मिलती थीं।

सन् 1963 में ब्रह्मा बाबा से गीत बनाने की श्रीमत मिली। ऊषा ने शास्त्रीय व सुगम संगीत का अभ्यास किया हुआ था। इसी कारण उन्होंने ललित सोडा से मिलकर घर में ही पहला-पहला गीत 'वसुधा के इस अंचल में..' रिकार्ड किया और फिर मधुबन ब्रह्मा बाबा को भेजा। मधुबन में गुरुवार के भोग में यह गीत दो बार बजाया गया। भोग में यह संदेश मिला कि बच्चों की बुद्धि राइट डायरेक्शन में चल रही है और पहला गीत बाप के स्वागत का बनाया है। दुनियावी कार्यक्रम में भी स्वागत गीत ही पहले होता है, बच्चों ने भी स्वागत गीत द्वारा मेरे दिव्य अवतरण की महिमा गाई है। बाबा ने भोग के संदेश में मुझे व ऊषा को वरदान दिया कि बच्चे, और भी ऐसे गीत बनाओ। बाद में हमने गीतों के दो रिकॉर्ड भी बनवाये और वे गीत आल इंडिया रेडियो को दिये। उस समय जब रेडियो पर रिकार्ड बजते थे तो हरेक गीत के लिए रॉयल्टी मिलती थी। दोनों गीतों की रॉयल्टी सारे हिंदुस्तान से मिलती रही और रिकार्ड के खर्च से ज्यादा आमदनी हुई। बाद में रेडियो वालों ने निर्णय बदला व रॉयल्टी देना बंद किया।

मई 1962 में हमने उत्तरी भारत के सभी सेवाकेन्द्रों का दौरा किया तथा अंत में मधुबन पहुँचे। दो दिन बाद मातेश्वरी हापुड़, दिल्ली आदि शहरों का चक्कर लगाकर मधुबन पधारी। फिर हमने मातेश्वरी जी को भी मुंबई आने का निमंत्रण दिया। इससे पहले भी सन् 1957 में मातेश्वरी व ब्रह्मा बाबा मेरे व शांता माता के निमंत्रण पर साढ़े चार मास मुंबई में रहकर गए थे। इस समय भी

बाबा ने निमंत्रण स्वीकार किया व मातेश्वरी के मुंबई आने का प्रोग्राम बनाया। मुंबई में मातेश्वरी हमारे साथ आठ मास रही तथा ऊषा बहन व शांता माता ने दिल से मातेश्वरी की सेवा की। हम सबने अद्भुत ज्ञान का खज़ाना व पालना मातेश्वरी से पाई। बाद में मातेश्वरी जी को ऑप्रेशन के कारण हमारे घर में दस मास रहना पड़ा फलस्वरूप हमारा ज्ञान का फाउण्डेशन बहुत मज़बूत हो गया।

ईश्वरीय सेवार्थ हम दोनों ने प्रदर्शनी का आयोजन किया और इस निमित्त दादी प्रकाशमणि जी का मुंबई आना हुआ और वे गामदेवी सेवाकेन्द्र पर जनवरी, 1969 तक रहीं। हम सबको दादी जी की बहुत सुंदर पालना मिली। बापदादा के वरदानों के फलस्वरूप हमने मिलकर ईश्वरीय सेवा की अनेक नई विधियाँ निकालीं जिससे विहंग मार्ग की सेवा शुरू हुई जोकि बाबा को बहुत पसंद थी। फिर 18 जनवरी 1969 को ब्रह्मा बाबा अव्यक्त हुए। ब्रह्मा बाबा के पार्थिव शरीर के अंतिम संस्कार की ज़िम्मेवारी दादी प्रकाशमणि जी ने मुझे दी तो मैंने ऊषा के साथ मिलकर अपने अलौकिक पिता के अंतिम संस्कार की विधि को पूर्ण किया। दादी प्रकाशमणि ने ब्रह्मा बाबा के पार्थिव शरीर को अग्निदान दिया।

प्रदर्शनी की सेवा के द्वारा विदेश का भी निमंत्रण मिला और जुलाई 1971 में हम पाँच लोग विदेश सेवा के लिए गए। ऊषा जी लौकिक कार्यवश दस दिन बाद विदेश यात्रा में सम्मिलित हुई। शिवबाबा की श्रीमत अनुसार पूर्व व पश्चिम दिशा में सेवाकेन्द्र खोलना था इसलिए इसी यात्रा के समय हांगकांग में ईश्वरीय सेवाकेन्द्र की स्थापना हुई। ऊषा व शीलइन्द्रा दादी वहाँ छह-सात मास रहे और सेवा की नींव पक्की कर सिंगापुर होते मुंबई लौटे।

सन् 1974 में हमें लंदन में अफ्रीका से राम भाई का निमंत्रण मिला और हम दोनों अफ्रीका की सेवा के लिए लंदन से निकले। फिर दादी जानकी जी को निमंत्रण दिया।

फिर ऊषा चार मास के लिए जापान की सेवा पर गई। सन् 1977 में जब दादी जी के साथ मेरा विदेश यात्रा पर जाना हुआ तब ऊषा अफ्रीका, मॉरिशियस की सेवा पर चार मास रही। वहाँ सेवा का बहुत विस्तार हुआ।

बाबा हमेशा मुरली में प्रेरणा देते थे कि चेरिटी बिगन्स एट होम अर्थात् अपने घर की भी ईश्वरीय सेवा करनी चाहिए इसलिए हमने अपने जन्मस्थान भावनगर में ईश्वरीय सेवायें की तब ऊषा बहन करीब दो मास भावनगर में रही। इसी दौरान अहमदाबाद में मकान मिला और हम दोनों ने मिलकर अहमदाबाद में सेवाकेन्द्र की स्थापना की। करीब 21 मास ऊषा बहन वहाँ रही। बाद में सरला बहन को पूना से अहमदाबाद भेजा गया तो ऊषा वापस मुंबई आ गई।

सन् 1983 में यूरोप की ईश्वरीय सेवा के लिए अव्यक्त बापदादा ने हम दोनों को भेजा तथा खास संदेश दिया कि हमें वैज्ञानिकों की भी सेवा करनी है। तब हमने अव्यक्त बापदादा को कहा कि वैज्ञानिकों की सेवा क्यों करनी चाहिए क्योंकि उनका पार्ट सिर्फ विनाश के साथ जुड़ा है तब अव्यक्त बापदादा ने कहा कि वैज्ञानिकों की ज़रूरत तो सतयुग में आप बच्चों की सेवा में विमान आदि बनाने के लिए होगी तो इनका भी अच्छा पार्ट है। वैज्ञानिकों की सेवा के फलस्वरूप जब ज्ञान सरोवर बना तब दादी जी ने हम दोनों को स्पार्क के द्वारा वैज्ञानिकों की आध्यात्मिक सेवा करने के निमित्त बनाया। उसी समय राजयोगा एज्यूकेशन एण्ड रिसर्च फाउण्डेशन की स्थापना हुई तथा उसके अंतर्गत विभिन्न विंग्स का गठन हुआ। मुझे ज्यूरिस्ट विंग तथा ऊषा जी को आर्ट एण्ड कल्चर विंग की ज़िम्मेवारी मिली। ऊषा जी ने आबू में होने वाले महोत्सवों, सम्मेलनों में नृत्य नाटिका, डांस, ड्रामा आदि द्वारा सांस्कृतिक सेवा कर सेवा में चार चांद लगाये। नये-नये गीत भी बनाये गये

जिससे सेवा का बहुत विस्तार हुआ।

जब दादी पुष्पशांता व दादी शीलइन्द्रा अव्यक्त हो गईं तब दादी प्रकाशमणि जी ने ऊषा को गामदेवी सेवाकेन्द्र की मुख्य संचालिका बनाया। ऊषा जी ने अपने जीवनकाल में दक्षिणी मुंबई में दस सेवाकेन्द्रों की स्थापना की। दुबई की सेवा की ज़िम्मेवारी भी हम दोनों पर थी इसलिए हमारा बहुत बार दुबई भी जाना हुआ ।

मेरी लौकिक माताजी सन् 2006 में अव्यक्त हो गई तो ऊषा की लौकिक ज़िम्मेवारी भी बढ़ गई। ऊषा जी लौकिक, अलौकिक, गामदेवी सेवाकेन्द्र, आर्ट एण्ड कल्चर विंग आदि की सब सेवायें करती थी, यह बहुत बड़ी बात है। सन् 2008 में ऊषा को कैंसर की बीमारी का आभास हुआ। बायोप्सी कराई और फिर ऑप्रेशन हुआ। कीमोथैरेपी की ट्रीटमेंट के कारण सिर के सब बाल झड़ गये फिर भी देही अभिमानी बन सेवा का कारोबार चलाती रही। सन् 2009 में डॉ. अशोक मेहता तथा अन्य दो डॉक्टर्स द्वारा पाँच घंटे का बड़ा ऑप्रेशन हुआ किंतु फिर भी बीमारी गुप्त रूप में अंदर ही अंदर बढ़ती रही। सन् 2010 के अगस्त मास में दोबारा हॉस्पिटल जाना पड़ा। आखिर 12 सितंबर 2010 को डॉक्टर ने कहा कि हमसे जो हो सकता था, हमने किया, अब इनको घर ले जाइये। कैंसर के कारण ऊषा को असहनीय पीड़ा होती थी फिर भी वे ईश्वरीय सेवा का कारोबार चलाती रही। असहनीय दर्द में शिवबाबा को याद करती थी, फिर मुझे कहती थी कि बाबा ने मेरी सारी पीड़ा ले ली।

इक्कीस सितंबर, 2010 को रात्रि में उसने पहली बार मुझसे ये शब्द कहे, 'आइये, हम अंतिम बार साथ भोजन करते हैं फिर मालूम नहीं कब साथ में भोजन कर सकेंगे।' मैंने पूरा भोजन खाया तथा ऊषा ने सूप आदि तरल भोज्य पदार्थ खाया। सितंबर 22 को प्रात:काल ऊषा सेमीकोमा में चली गई। थोड़ा होश आया तब कहा, 'हू जाऊं छू' अर्थात् मैं जा रही हूँ। ऐसा चार बार कहा और फिर से कोमा में चली गई फिर रात्रि 10 बजकर 10 मिनट पर अपना पुराना शरीर छोड़ा। सितंबर 24 को अग्नि संस्कार किया गया। बाद में भोग के संदेश में अव्यक्त बापदादा ने कहा कि शरीर छोड़ने से पहले ऊषा ने शिवबाबा से वायदा लिया कि आप रमेश के स्वास्थ्य की देखभाल करेंगे तो मैं शरीर छोडूँगी वरना कितनी भी पीड़ा हो, मैं अपना शरीर नहीं छोडूँगी। तब बाबा ने ऊषा को वचन दिया।

भोग संदेश में शिवबाबा ने दो बातें कही, एक तो रोज़ नई-नई चीज़ों का भोग 13 दिन तक लगाया जाये क्योंकि बीमारी के कारण ऊषा बच्ची ने बहुत दिनों से भोजन नहीं खाया है, सिर्फ जूस और सूप लेती रही है। दूसरी बात, बच्ची की इच्छा है कि उसके निमित्त कोई यादगार स्थान बने जहाँ बाबा के बच्चे आकर बाबा का संदेश प्राप्त करते रहें और उसका पुण्य शरीर छूटने के बाद भी मिलता रहे। बाबा ने कहा कि तेरह दिन तक वतन में ऊषा को रखूँगा फिर 14वें दिन स्थूल वतन में बहुत बड़े घराने में भेज दूँगा। उस घर का साक्षात्कार भी ऊषा को कराया जहाँ शिवबाबा उन्हें भेजेंगे। अक्टूबर 7 को सूक्ष्म वतन से ऊषा ने विदाई ली व नये गर्भ में प्रवेश करने तक बापदादा की अंगुली पकड़े रखी। बापदादा ने अनेक वरदान दिये, इस प्रकार वरदानों से सजी-सजाई ऊषा जी आगे का नया जीवन ईश्वरीय सेवार्थ व्यतीत करेंगी। हम सबने मिलकर चौदह दिन मुंबई व आबू में लौकिक-अलौकिक भाई-बहनों के साथ ऊषा जी को पुष्पांजलि, भावांजलि व श्रद्धांजलि अर्पित की।

बीस फरवरी, 2010 को जिस हॉल में हमने पवित्र ईश्वरीय जीवन की स्वर्ण जयंती मनाई, उसी में हमने उनको अंतिम विदाई दी। इस लेखनी द्वारा मैं ऊषा जी के साथ के अपने दिव्य अनुभवों की दास्तान प्रस्तुत कर अपने व अपने परिवार की ओर से उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ। ❖

गृहस्थ में रहते मुक्ति का मर्म

• ब्रह्माकुमारी उर्मिला, शान्तिवन

एक बार एक महिला गोष्ठी में प्रश्न पूछा गया, क्या कारण है कि एक महिला घर-परिवार की सेवा संभाल में अपना सारा जीवन कुर्बान करने के बाद भी यही कहती हुई सुनी जाती है कि इतना सब करके मैंने क्या पाया? वह कहती है, मैंने परिवार की खुशी में अपनी हर इच्छा का दम घोट लिया फिर भी किसी की तरफ से अहसान या कृतज्ञता के दो बोल भी सुनने को नहीं मिले और दर्द की लहर तो तब उठती है जब बच्चे भी कह देते हैं, तुमने हमारे लिए किया ही क्या है? यह प्रश्न केवल महिलाओं का ही नहीं बल्कि जीवन की सांझ की ओर ढलते हर उस व्यक्ति का है जिसने अपनी जवानी फर्जअदाई में विलीन कर दी पर आज उसे उसकी मेहनत की कीमत कोई कर्म द्वारा तो क्या, शब्दों द्वारा भी देने को तैयार नहीं है। आइये, इस प्रश्न का उत्तर खोजें।

तपस्यालय या भोगालय

भारतीय संस्कृति में गृहस्थ को आश्रम माना गया है और फर्जअदाई को कर्मयोग। इन दोनों भावनाओं को लेकर किए गए कर्म, मनुष्य को जीवन के किसी भी पल में पश्चाताप का सामना करने नहीं देते। समस्या तब पैदा होती है जब गृहस्थ तपस्यालय के स्थान पर भोगालय बन जाता है और कर्त्तव्य, कर्मयोग के स्थान पर मोहपाश।

विधि में चूक रह गई

मानव के बचपन की नदी का जल स्वच्छता से भरपूर होता है परंतु जवानी की ओर बढ़ते-बढ़ते यह स्वच्छता दागी होनी शुरू हो जाती है। फिर प्यार किसी से कम, किसी से ज्यादा हो जाता है। अंदर कुछ, बाहर कुछ – ऐसा दोहरा व्यक्तित्व बन जाता है और जीवन कुछ गिनी-चुनी आत्माओं के स्वार्थों को पूरा करने में व्यस्त हो जाता है। यही व्यस्तता शारीरिक दुर्बलता को जन्म देती है। फिर संबंधों की तरफ से उपेक्षा मिलनी प्रारंभ हो जाती है। कमाई ऐसी की जो साथ चलने वाली नहीं है और संबंध ऐसे बनाए जो स्वार्थी निकले। अपनी तरफ से फ़र्ज़ अदायगी की पर थी वह कर्ज़ अदायगी। कर्ज़ उतारा कम, चढ़ा लिया ज़्यादा। भगवान को याद किया नहीं, किया भी तो स्वार्थ और दिखावेवश। अंत समय की ओर बढ़ते जब अपना खाता देखा तो खाली मिला। जो किया, वह जमा होने योग्य नहीं था। किया तो बहुत पर विधि में चूक रह गई। क्या चूक रह गई?

मोहपाश से बचें

हम सबने मक्खी देखी है। उसे मीठी वस्तु से बहुत प्यार होता है। यदि फर्श पर शहद (कोई भी मीठा तरल पदार्थ) बिखर जाए तो वह दौड़ी-दौड़ी आती है। मक्खी का पेट तो बहुत छोटा होता है, वह चाहे तो गिरे हुए शहद को एक किनारे से चूसकर, अपना पेट भरकर आराम से उड़ सकती है पर उससे एक ग़लती हो जाती है। वह मुख से खाना भूल, उस चिपचिपे पदार्थ पर हाथ-पाँव और संपूर्ण शरीर सहित टूट पड़ती है। उसके नन्हे हाथ-पाँव उसमें चिपक जाते हैं। शहद के अंबार पर बैठकर भी वह भूखी की भूखी रह जाती है। केवल मुँह लगाने से जो चीज़ आनन्द दे सकती थी, संपूर्ण शरीर को, मोहवश, डुबो लेने से वही जानलेवा बन जाती है। शहद में छटपटाते हुए मक्खी प्राण त्याग देती है। कारण है मक्खी का मोह।

मोह जहाँ होता है, वहाँ मनुष्य चीज़ का सुख नहीं लेता पर चीज़ों का संग्रह कर उनके मोहपाश में बँधकर तिलमिलाता हुआ प्राण त्याग देता है। क्या ही अच्छा हो, हम उस

मक्खी से शिक्षा लें। हम कर्त्तव्यों में अपने पूरे अस्तित्व को लिपायमान न करें। कर्त्तव्य पूरा करके न्यारा होना सीखें। **अनावश्यक रूप से घर-परिवार के कार्यों में फँसे रहना, पुण्य कर्मों के लिए समय ना निकालना, आत्म अवलोकन न करना, संसार से लौटना भी है यह भूल जाना, भगवान के प्रति पल-पल कृतज्ञता का इज़हार न करना – ये कुछ ऐसी बातें हैं जो हमें कर्मों के बोझ तले लाद देती हैं, हमारा सुख-चैन हर लेती हैं।** फिर हमारे मुख से निकलता है, हमने इतना किया, हमें क्या मिला?

न्यारेपन से आती है ताजगी

केवल वस्तुओं, पदार्थों के प्रति ही मेरापन नहीं, मेरेपन से भरे संबंध भी पाश ही सिद्ध होते हैं। मेरेपन से भरे संबंध ऐसे ही होते हैं जैसे छुईमुई के पौधे का स्पर्श। हमारा स्पर्श उसमें मुरझाहट ला देता है। हम तो उसे प्यार से सहलाते हैं पर यह प्यार उसे रास नहीं आता, वह पौधा अपनी ताजगी त्याग देता है। ताजगी की वापसी के लिए पुन: पुन: सहलाने का प्रयास किया जाये तो परिणाम बद से बदतर होता जाता है। मेरेपन और मोह से भरे संबंधों में भी ऐसा ही होता है। हम अपने मोह और मेरेपन से जितना उनको छूते हैं, खिलाते हैं, पिलाते हैं, वे उतने ही ज्यादा मुरझाते जाते हैं। फिर हम कहते हैं, हम इतना करते हैं फिर ये खुश क्यों नहीं रहते? इसलिए कि इनका हाल छुईमुई जैसा हो गया है। छुईमुई को ठीक करने के लिए हमें उससे न्यारा होना होता है। ज्योंहि हम उससे न्यारे हो जाते हैं, उसकी ताजगी लौट आती है। संबंधों में भी न्यारापन आने से वास्तविक प्यारापन आता है। न्यारापन अर्थात् ये सब भगवान के हैं, हम इनके साथ निमित्त बनकर सेवारत हैं, ज़िम्मेवारी बाबा की है।

सहयोग और लगाव

एक होता है सहयोग करना, वह ठीक है पर मोहवश चिपकना ग़लत है। जैसे दो कागज़ों को हम कोने पर स्टेपलर लगाकर जोड़ते हैं। कोने से जुड़े दोनों कागज़ पूरे के पूरे खुले रहते हैं और हम उनका आगे-पीछे का पूरा मैटर पढ़ सकते हैं। पिन ने दोनों कागज़ों को इकट्ठा करने में सहयोग दिया। सहयोग आवश्यक है पर यदि यही कागज़ किसी भी आधार से, एक तरफ से आपस में चिपक जाएँ तो, चिपके तरफ का मैटर तो व्यर्थ ही हो जायेगा। कागज़ थे तो दो पर चिपककर वे दो के स्थान पर एक जितना कार्य भी नहीं करेंगे। इसको कहेंगे आपसी लगाव (attachment) ने उनकी शक्ति को व्यर्थ कर दिया। इसी प्रकार, हम भी कार्य को लगाववश करते हैं तो मानो उससे चिपक जाते हैं, इससे कर्त्तव्य का निर्वहन भी ठीक से नहीं होता और शक्ति भी ज्यादा लगती है। परंतु जब कर्त्तव्य पूर्ण करते हुए भी अपने मन-बुद्धि को निर्बन्धन रखते हैं तो कार्य भी ठीक होता है और शक्ति भी बचती है।

निर्बन्धन का अर्थ है हम यही चिन्तन रखें कि हम निमित्त मात्र हैं, शरीर में भी आत्मा निमित्त मात्र है और सृष्टि मंच पर पार्ट भी निमित्त मात्र बजा रही है। यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है, सब कुछ अस्थाई और नश्वर है। जो है ही अस्थाई, उससे स्थायित्व की आश क्यों लगाएँ? स्थाई हूँ मैं आत्मा और मेरा पिता परमात्मा। तो क्यों न स्थाई में मन को लगाऊँ? इस प्रकार, लौकिक कर्म करते भी अलौकिक चिन्तन करते रहेंगे, हर कर्म को ईश्वर अर्पण करते रहेंगे, मन-बुद्धि को 'मैंने इतना किया' इस बोझ से हलका रख यह सोचेंगे कि करावनहार ने मुझ निमित्त से करवाया तो जीवन के उत्तरार्ध में यह प्रश्न नहीं उठेगा कि मुझे क्या मिला बल्कि यह विचार आयेगा कि जो किया, वह मुझ आत्मा में संस्कार रूप में समाहित है, यहाँ भी मेरे साथ है और साथ ही जायेगा। ❖

तुलना न कर देवतुल्य बनें

• ब्रह्माकुमारी किरण, मुंबई (कांदिवली ईस्ट)

तुलना वही व्यक्ति करता है जिसके अंदर आत्म-सम्मान की कमी होती है। इस कमी वाला व्यक्ति स्वयं को दीन-हीन मानकर चलता है और ऊँच पद पर होते हुए भी उसके सुख का अनुभव नहीं ले पाता है।

असंतुष्ट, अप्राप्ति वाला तथा अहमी व्यक्ति अक्सर दूसरों से अपनी तुलना करता रहता है। कहावत भी है कि दूसरों की थाली में घी ज्यादा दिखाई देता है। लेकिन सत्य यह है कि कोई भी व्यक्ति संपूर्ण नहीं है और ना ही कोई अपूर्ण है (Every man is not perfect and every man is not imperfect)। प्रत्येक व्यक्ति के अंदर कोई न कोई विशेषता तो होती ही है और कोई न कोई कमी भी।

हरेक अपने आप में विशेष है

तुलना करने पर यदि कोई व्यक्ति हमसे अधिक श्रेष्ठ और अधिक प्राप्ति संपन्न नज़र आता है तो हीन भावना आने लगती है। इसके लिए कहा गया है – Being inferior is different from feeling inferior. (हीन होना अलग बात है पर अपने को हीन महसूस करना बिल्कुल ही अलग बात है)। यदि हम किसी बात में किसी से कम हैं तो ज़रूरी नहीं कि हम उसे महसूस करें। अमुक व्यक्ति में अमुक विशेषता है तो ज़रूर उसको लाने में उसने मेहनत की होगी। **जैसे सोने में रंग है, सुगंध नहीं; चंदन में सुगंध है, पुष्प नहीं; विद्वान के पास सरस्वती है, धन नहीं और धनवान के पास सरस्वती अधिकतर नहीं होती है।** लेकिन ऐसी कमियाँ होते हुए भी हरेक अपने आप में विशेष है! संतुष्टता बहुत बड़ा धन है। कबीर जी के अनुसार –

गोधन, गजधन,
वाजिधन और रत्नधन खान।
जब आये संतोष धन,
सब धन धूरि समान।।

असंतुष्ट होने पर सबसे पहले क्रोध आता है फिर उसके पीछे ईर्ष्या और पीछे नफरत भी जन्म ले लेती है। लेकिन यदि किसी की उन्नति को देखकर ईर्ष्या होती है तो तनिक सोचिये, उन्नति का कारण अवश्य कोई न कोई गुण या योग्यता होगी। तुलना करने के बजाय अपने आंतरिक गुणों को जगाकर उनका विकास करें। **अपनी शक्तियों को गुणों के विकास में खर्च करें, न कि तुलना करने में या दूसरों के प्रति नकारात्मक भावनाओं में। तुलना करना नकारात्मकता है, स्वयं को देखना ही सकारात्मकता है।**

तुलना से अटक जाता है विकास

दूसरों से तुलना करने वाला व्यक्ति कभी भी जीवन में संतुष्ट नहीं रह सकता, न दूसरों को संतुष्ट कर सकता है। उसका पूरा जीवन दूसरों को देखने में ही चला जाता है। उसके जीवन में न कोई लक्ष्य होता है, न ही कोई मंज़िल। अगर लक्ष्य है तो दूसरों को न देख अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ें। तुलना करने वाले के मन की स्थिति एकरस नहीं रह सकती। वह कभी अपने को दूसरों से श्रेष्ठ समझने लगता है जिसे अहं भावना (Superiority Complex) कहते हैं। इससे विकास अटक जाता है। कभी वह अपने को दूसरों से कनिष्ठ या नीचा समझने लगता है जिसे हीन भावना (Inferiority Complex) कहते हैं। इससे भी उसका विकास अटक जाता है। वो अपने अंदर छिपी शक्तियों को महसूस नहीं कर पाता।

समस्या के मूल में जायें तो यह आभास होता है कि कहीं न कहीं 'मैं-पन' है जिसे 'अभिमान' (Ego) कहते हैं। अंदर छिपा अहंकार मानव के सुख-चैन को छीन लेता है। तुलना करने वाले व्यक्ति को स्वयं की महिमा सुनना बहुत अच्छा लगता है जबकि वह दूसरों की महिमा सुन नहीं सकता। जब स्वयं की महिमा अच्छी

लगने लगती है तो उन्नति के दरवाज़े बंद हो जाते हैं।

आज ज़माना है सहयोग का

आप अपनी प्रगति की तुलना दूसरों से करने से तीन तरह के दोषों के शिकार हो सकते हैं, या तो स्वयं को दूसरों से हीन समझोगे या श्रेष्ठ समझोगे या उनसे प्रभावित हो जाओगे। तीनों ही स्थितियाँ हानिकारक हैं। पहले ज़माना था Comparison (तुलना) का, फिर जमाना आया Competition (कुछ करके उनसे आगे बढ़ना) का और आज ज़माना चल रहा है Co-operation (सहयोग) का। आजकल लोग दूसरों को मदद करके अपने को महान साबित करते हैं। कहते हैं, **'बराबरी का सौदा माना युद्ध और समझदारी का सौदा अर्थात् विजय।'**

हम आज जो हैं उससे आगे जाना है

तुलना करना मनुष्य का स्वभाव है ही नहीं। मनुष्य जो है उससे उसे और आगे जाना है अर्थात् आज मैं जो हूँ, जैसा हूँ, मुझे कल उससे और आगे जाना है। आगे बढ़ सकेंगे हम चरित्र बल से। आज से पाँच हज़ार वर्ष पहले इस पृथ्वी पर जो रहते थे, उनको देवता कहा जाता था क्योंकि उनके अंदर मनुष्यों से बढ़कर गुण थे और आज भी अगर कोई दान-पुण्य करता है, परोपकार या समाज सेवा करता है तो हम कहते हैं, यह तो मनुष्य नहीं लेकिन देवता है। और जब देवता तो छोड़ो लेकिन मनुष्य जैसे गुण भी दिखाई नहीं पड़ते हैं तब हम कहते हैं, यह तो जानवर से भी बदतर है। आत्म-सम्मान खो देने पर वह मनुष्य भी नहीं रह जाता और जब आत्म-सम्मान युक्त बनता है, स्वयं का सही मूल्यांकन करता है, स्वयं को उचित मान देता है तो मानव से आगे देव-तुल्य बन सकता है।

वास्तव में जीवन जीना एक कला है और श्रेष्ठ जीवन जीना एक महान तपस्या है जिसके लिए अधिक मेहनत व समझ की आवश्यकता पड़ती है। आत्म-सम्मान से जीना यही श्रेष्ठ जीवन है, न कि तुलना करके जीना। हम उन्हीं महान हस्तियों को याद करते हैं जो आत्म-सम्मान से इस संसार में रहकर गये हैं। जिन्होंने तुलना की, उनका सर्वनाश हो गया क्योंकि तुलनात्मक स्वभाव में ईर्ष्या, क्रोध, नफरत, अभिमान सारे अवगुण आ जाते हैं।

अपनी योग्यता छिपाना भी अपने से छल है

आत्म-सम्मान का आधार है स्व पर नियंत्रण। नियंत्रण तब होगा जब हम स्व को जानने की कोशिश करेंगे। आज आवश्यकता है अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने की। वास्तविक स्वरूप ही संपूर्ण है क्योंकि उसको बनाने वाला स्वयं परमपिता परमात्मा शिव है जो कि स्वयं संपूर्ण है। अपनी वा दूसरों की त्रुटियाँ देखने वाला स्वरूप वास्तव में हमारा सच्चा स्वरूप नहीं है। अतः व्यक्ति अपने सत्य स्वरूप को पहचान कर ही संतुष्ट हो सकता है। सत्य स्वरूप है आत्मस्वरूप। हम अजर, अमर आत्मा हैं जिन्हें काल खा नहीं सकता। आत्मा ज्योतिस्वरूप है जिसमें ज्ञान, पवित्रता, शान्ति, प्रेम, सुख, आनन्द और शक्ति – ये सात मौलिक गुण भरे हैं। इन गुणों का चिन्तन करना, इनको व्यवहार में लाना और हर परिस्थिति में इन्हें सुरक्षित रखना ही आत्म-सम्मान है। इसी से जागृत होता है आत्म-विश्वास। अतः अपने इन गुणों, शक्तियों और बुद्धिमता को पहचानिये, प्रयोग कीजिए और बढ़ाइये। अगर आप अपनी योग्यता का प्रयोग नहीं कर रहे हैं तो आप अपने आप से छल कर रहे हैं। स्वयं को धोखा दे रहे हैं। धोखा देना अर्थात् आप स्वयं की शक्तियों को अच्छे कार्य में प्रयोग न करके, तुलना द्वारा व्यर्थ कर रहे हैं। आपमें अनेक विशेषतायें हैं जो औरों में नहीं हैं। उन्हें पहचानें और उनका प्रयोग करें। आप पायेंगे, आप दुनिया के सबसे संतुष्ट व्यक्ति हैं। याद रखिये, जो संतुष्ट है, वही रिचेस्ट इन द वर्ल्ड है। ❖

सूचना

ब्र.कु. ऊषा बहन, मुम्बई
लौकिक जन्म: 1937 (73 वर्ष)
अलौकिक जन्म: 1960

हम सबकी अति स्नेही, सदा बेहद सेवाओं के उमंग-उत्साह में रहने वाली, प्यारे बापदादा और दादियों की अति प्रिय, मुम्बई के रमेश भाई जी की विशेष सहयोगी, राइट हैण्ड ऊषा बहन जी का कुछ समय से स्वास्थ्य ठीक नहीं था। 23 सितम्बर 2010 रात्रि 10 बजे आप पुराना शरीर छोड़ बापदादा की गोद में विश्रामी हुई।

आप प्रतिभाशाली व्यक्तित्व की धनी रमेश भाई जी के साथ पवित्र युगलमूर्त रूप में रहते ब्रह्माकुमारी शिक्षिका एवं निर्देशिका थी। साकार में मात-पिता की डायरेक्ट पालना में पली, देश-विदेश में अनेक आत्माओं की सेवा करती रही। आप कला एवं संस्कृति प्रभाग की राष्ट्रीय संयोजिका थी। आपके मार्गदर्शन में मुम्बई गामदेवी तथा दादर सेवाकेन्द्रों का विधिवत् संचालन होता रहा। लौकिक-अलौकिक का अद्भुत बैलेन्स रखते हुए लगभग 48 वर्ष आपने बाबा की अथक सेवायें की। ऐसी महान विभूति को ज्ञानामृत परिवार स्नेह भरी हार्दिक श्रद्धांजली अर्पित करता है।

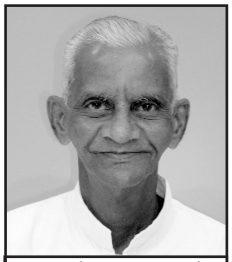

ब्र.कु. हर्षित काका (69 वर्ष)
जन्मतिथि: 4-11-1941
समर्पित वर्ष: 1981

प्यारे बापदादा के अति स्नेही, मधुबन बेहद यज्ञ में हड्डी सेवा करने वाले, सर्व के स्नेही हर्षित काका ने पिछले 30 वर्षों से समर्पित रूप में भोलानाथ के भण्डारे में सेवायें दी। आपकी लौकिक युगल नडियाद सेवाकेन्द्र पर अपनी सेवायें दे रही हैं। हर्षित काका की कुछ समय से तबीयत ठीक नहीं थी इसलिए नडियाद में ही ट्रीटमेन्ट ले रहे थे। दिनांक 23 सितंबर, 2010 को सायं 7 बजे आप पुराना शरीर छोड़ बापदादा की गोदी में चले गये। ज्ञानामृत परिवार ऐसे अथक सेवाधारी भ्राता जी को स्नेह भरी हार्दिक श्रद्धांजली अर्पित करता है।

विश्व का अनोखा दरबार

मैं उत्तर प्रदेश में चार और कोलकाता में एक पैथोलोजी सेन्टर, एक पैरामेडिकल सेन्टर, एक प्रेस, मीडिया की सेवा तथा आशा सोसायटी संचालित करता हूँ। इतना अधिक काम होने के कारण मुझे गुस्सा आ जाता था। मन चंचल और बेचैन रहता था। चाहता था कि दस दिन के लिए कहीं दूर चला जाऊँ पर इतनी जिम्मेदारी थी कि यह असंभव था। एक दिन अपने दोस्त के यहाँ ज्ञानामृत पत्रिका मिली। मैंने घर लाकर पढ़ी और दूसरे ही दिन जा पहुँचा प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय में। वहाँ का वातावरण देखकर मन को बहुत सुकून मिला। मुझे बहनों ने सात दिन का कोर्स करवाया। कोर्स करते हुए लग रहा था कि यहाँ सभी लोग मुझे बहुत पहले से जानते हैं। काम तो आज भी वही है पर अब मुझे अपने पर कंट्रोलिंग पावर मिल गई है। ज्ञानामृत पढ़ने से क्रोध सहजता से छूटता जा रहा है और सच्चाई तथा पवित्रता की प्राप्ति होती जा रही है। मुझे लग रहा है कि विश्व के इस अनोखे दरबार की खोज मुझे बहुत पहले से थी।

– डॉ.बेचन प्रसाद खरवार, मऊ

गतांक से आगे....

जीभ पर बन्धन

• ब्रह्माकुमार नरेश, मुजफ्फरनगर

जितना बोलें उससे दुगुना सुनें

अधिक बोलने वाला मनुष्य दोस्तों को पीड़ा देता है, दुश्मनों को फायदा पहुँचाता है और स्वयं को हानि पहुँचाता है। अधिक बोलकर किसी शत्रु को मित्र नहीं बनाया जा सकता परंतु अधिक बोलकर किसी मित्र को शत्रु बनाया जा सकता है। जिस मनुष्य के पास जितने ज्यादा अच्छे विचार होते हैं, वह उतना कम वाचा में आता है और जब भी वाचा में आता है, कम शब्दों में ज्यादा बातें कर लेता है। वह बोलते समय, समय बर्बाद नहीं करता है बल्कि बोलता ही है समय बचाने के लिए। बोलने की सही कला केवल यही नहीं है कि सही जगह पर सही बात बोली जाये बल्कि यह भी है कि जहाँ ग़लत या नकारात्मक बातों का संदर्भ देना पड़े, वहाँ चुप रहा जाये। प्रकृति ने मनुष्यों को जीभ एक दी है परंतु आँख व कान दो-दो, जो कि इशारा है कि मनुष्य जो बोले, उसके वर्तमान परिणाम को भी देखे और भविष्य परिणाम को भी देखे। और जितना बोले, उससे दुगुना सुने। जिसे सुनने की कला आती है, वह मतलब की बातें सुनता है और बेमतलब की बातों को अनसुना करता है। उसके नेत्र बोलते हैं। ज़रा-सी बात को भाषण का रूप दे देना एक विकार है परंतु किसी भाषण को 'गागर से सागर' करके समाप्त कर देना एक कला है।

बोलो तभी जब बोल खामोशी से बेहतर हों

जिस प्रकार दौड़ती हुई ट्रेन पर ध्यान नहीं टिक सकता, उसी प्रकार चलती जीभ पर भी कोई विचार नहीं ठहर सकता अर्थात् बक-बक करते मनुष्य को सद्‌विचार का सहयोग नहीं मिल पाता। जिस प्रकार बहते हुए पानी पर कोई प्रतिबिम्ब नहीं बन सकता, उसी प्रकार बहकी हुई जीभ पर कोई मीठी बात नहीं आ सकती। ऐसे मनुष्य का चित्त एक विषय पर टिक नहीं सकता। बोलना तभी चाहिये, जब बोल 'खामोशी' से बेहतर हो। मौके की नज़ाकत को देख चुप रह जाना या बेमौके न बोलना, एक लंबी-चौड़ी असफल दलील से बेहतर है। बस ज़रूरत है जीभ पर बंधन की।

वाणी से संस्कारों की पहचान

बिहार में सिंह बहादुर नाम का एक राजा अपनी राजधानी आनन्दपुरी में रहता था। पास में संन्यासियों का एक आश्रम था। एक बार राजदरबारियों ने द्वेषवश राजा से शिकायत करी कि इस आश्रम के संन्यासी पकवान खाकर सोते रहते हैं और कोई तपस्या नहीं करते। राजा ने आश्रम के महंत स्वामी निरालम्बानन्द को बुलवाया और इस आरोप का जवाब माँगा। महंतजी ने कहा कि मैं कल सवेरे तीन बजे आऊँगा और आप मेरे साथ चलना। सवेरे महंत जी राजा को, राजदरबारियों के घर पर ले गये और उनके चेहरे पर पानी का छींटा डाला। वे सोते हुए भी चिड़चिड़ा गये और मुख पर पानी डालने वाले को गालियाँ देने लगे। महंत फिर राजा को उनकी गौशाला में ले गये और सो रहे रखवालों पर भी पानी का छींटा डाला। वे भी चिल्लाने लगे, 'कौन हैं जो सोने नहीं दे रहे हैं, भागो यहाँ से।' फिर महंत राजा को अपने आश्रम पर ले कर आये और सो रहे संन्यासियों के चेहरे पर पानी डाल दिया। संन्यासियों के मुँह से निकला,'हरि ओम्', 'राम-राम' इत्यादि। इससे पता पड़ता है कि राजदरबारी, गौशाला के रक्षक और संन्यासी के संस्कार किस प्रकार के थे।

मृत्योपरान्त बोले गए शब्दों का साक्षात्कार

बार-बार के उपयोग से कोई भी चीज़ या तो घटती है या अनुपयोगी होती जाती है परंतु जीभ का बार-बार

का उपयोग इसमें चपलता, तीखापन व पैनापन लाता है। अत्यधिक बोलने का संस्कार मृत्योपरांत भी आत्मा को दुख देता है। शरीर छूट जाने के बाद वाचाल आत्मा, जीभ के अभाव में न बोल पाने पर दुखी हो जाती है। इसके साथ ही अपने बोल द्वारा दूसरों को दिये गये दुख का भी उसे साक्षात्कार होता है। मनुष्य को अपने कर्मों का या तो भुगतान अदा करना पड़ता है या भुगतान प्राप्त करना होता है। गर्भ में जेल जैसा बंधन अनुभव करना भी कर्मों का हिसाब-किताब है। पिछले जीवन में जीभ की भूमिका क्या रही थी, उस पर भी गर्भ-बंधन की महसूसता का प्रतिशत निर्भर करता है। फिर जन्म लेकर वह मनुष्य यदि बुरे कर्म करता है तो स्थूल जेल में पहुँच जाता है। इसका मुख्य कारण कहीं न कहीं जीभ का गलत प्रयोग होना भी है। तो भूल जीभ करती है और बंधन में सारा शरीर आता है। परंतु जीभ का सही उपयोग बंधनमुक्त करने का कारण बनता है, चाहे वह वकील की जीभ हो या प्रत्यक्षदर्शी गवाह की जीभ हो या फिर विरोधी की क्षमा भावना से प्रेरित जीभ हो। एक मनुष्य जो जीभ से बड़े अच्छे सुझाव देता है परंतु इन्हें कर्म में कभी नहीं लाता, वह ऐसे मुर्गे के समान है जो सवेरे बांग देकर मोहल्ले वालों को तो जगा देता है परंतु खुद सो जाता है।

ढाई इंच की जीभ पर निर्भर है ढाई हज़ार साल का भाग्य

ढाई इंच की विनाशी जीभ की सजगता या चपलता से ढाई हज़ार साल का अविनाशी भाग्य बन भी सकता है और बिगड़ भी सकता है। अभी चल रहे अंतिम समय में जीभ ढाई अक्षर प्रेम के धारण करती है या फिर ढाई अक्षर घृणा या द्वेष के, उसी से 'कल्पवृत्त' में आत्मा के भाग्य का निर्धारण होता है। प्रेम या घृणा के व्यक्त शब्द भले ही यहीं रह जाते हैं परंतु उनसे बने व्यक्तित्व को आत्मा साथ ले जाती है। मानव के व्यक्तित्व की पहली झलक चेहरे से मिलती है, दूसरी झलक उसके बोल से मिलती है और तीसरी झलक उसके कर्म से मिलती है। चेहरा उसकी आँखों द्वारा पहचाना जाता है, बोल जीभ द्वारा पहचान पाते हैं और कर्म आचरण से पहचान लिए जाते हैं। एक डॉक्टर भी जब मरीज़ की जाँच करता है तो उसकी आँखों व जीभ का मुआयना करके फिर उसकी जीवन-शैली (कर्म) पर सवाल करता है। निराकार परमपिता शिव भी सुप्रीम रूहानी डॉक्टर के तौर पर मनुष्यों को, आँखों व वाणी को संभालने व आचरण से किसी को भी दुख न पहुँचाने की राय देते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि सुखदाई आचरण भी जीभ के विवेकानुकूल संयम से बनता है।

मौन, जीभ और मन दोनों का

जीभ पर बंधन लगाना मौन कहलाता है। मौन आध्यात्मिक साधना का एक माध्यम है। परंतु मौन, जीभ व मन दोनों का हो, तब ही फायदा मिलता है। जीभ पर बंधन लगाना आसान है परंतु मन को निर्संकल्प करना संभव नहीं है। शारीरिक ज्ञानेन्द्रियाँ मुख के मौन में रहते भी मन से बुलवाती रहती हैं। कानों में जो शब्द या ध्वनि पड़ती रहती है, उसके स्वरूप के अनुरूप मन प्रतिक्रिया में बोलता रहता है। जैसे कि यदि कोई सुरीला गाना सुनाई पड़ता है तो मन में शब्द गूंजते हैं कि 'वाह, गाने वाले का गला कितना मीठा है' और यदि कोई किसी पर चिल्ला रहा है तो मन बोल पड़ता है कि 'क्यों बेकार में गला फाड़ रहा है।' उसी प्रकार नेत्र यदि कोई अच्छा दृश्य देखते हैं तो मन बोल पड़ता है कि 'वाह, अति सुन्दर' और यदि कोई गंदा दृश्य या दुष्ट मनुष्य दिख पड़ता है तो सिर दूसरी तरफ कर लेने पर भी मन में आवाज़ उठती है कि 'सवेरे-सवेरे यह क्या सामने आ गया।' मौनव्रत लिया मनुष्य जब भोजन से स्वाद पाता है तो मन बोल पड़ता है कि 'पता नहीं आज किसने इतना स्वादिष्ट भोजन बनाया है।' यदि कहीं से गुज़रते हुए नाक में खुशबू या बदबू आती है तो मन में फिर उसी अनुरूप

प्रतिक्रिया उठती है। कहने का भाव है कि जिसने अपनी ज्ञानेन्द्रियों पर राज करना नहीं सीखा है, उसके मन में ये इंद्रियाँ बोलती रहती है अर्थात् ये इंद्रियाँ भी जीभ की 'राजदूत' बनकर उसके कार्य को जारी रखती हैं।

सर्वोत्तम एकांतवास है मौन

यदि मन को श्रेष्ठ कल्याणकारी चिन्तन में टिका लिया जाये तो यही मन का मौन कहा जा सकता है। मौन का जो आदी है, वह जब बोलता है तो उसके बोल सारयुक्त, गहरे, गंभीर व मीठे होते हैं। **मौन, मन का गुंजन है, हृदय का स्पंदन है, विश्वसनीय मित्र है, सर्वोत्तम एकांतवास है, आत्मा का मार्गदर्शक है, हृदय की भाषा है, विचारशीलता की जननी है। मौन के वृक्ष पर ही शान्ति के फूल खिलते हैं। अधिक बोलना पोल खोलता है, कम बोलना कमज़ोरियों को ढक देता है। अधिक बोलना ढोल है, ना बोलना ढाल है जो दूसरों के वाक्यप्रहार से बचाती है। जिस प्रकार सब्जी में हल्का-सा नमक उसके स्वाद को बढ़ा देता है, उसी प्रकार का महत्त्व योग-साधना में मौन का है।**

जो जागा हुआ है, उसकी जीभ सोई हुई है

जो कार्य किसी को बार-बार समझाने व लंबी-चौड़ी दलीलें देने से भी नहीं बन पाता, वह कार्य जीभ पर बंधन लगाने से सहज सफल हो जाता है। जो व्यक्ति आपके मीठे सारगर्भित शब्दों से अप्रभावित है, वह आपके लंबे-चौड़े व्याख्यान से भी नहीं समझेगा। किसी को बार-बार समझाने की बजाय आप उसकी हरकतों पर मौन धारण कर लें, तो वह अपने को असहज महसूस करने लगेगा। वह खुद ही आपसे अपनी गलती बतला कर उसके सुधार का आश्वासन देगा। देखने में यह आता है कि आज जिसके पास जितना ज़्यादा धन है वह उतना ही ज्यादा वाचाल होता है। कम धन व संसाधनों वाले मनुष्य कम बोलते हैं। यही कारण है कि ऐसे कम बोलने वाले मनुष्य ही आध्यात्मिक ज्ञान को जल्दी प्राप्त कर लेते हैं। जो प्रज्ञावान है, जागा हुआ है, उसकी जीभ सोई होती है परंतु जो धनवान है, अज्ञान की नींद में है, उसकी जीभ इतनी जगी होती है कि अक्सर सोते हुए भी बड़बड़ाती है। दस निर्धन मनुष्यों को आप रात में एक कमरे में सुला दें, वे चुपचाप सो जायेंगे परंतु दो धन्ना सेठों को आप एक कमरे में सुला कर देखें, वे शायद पूरी रात न सो सकें। उनके अहं के प्रकंपन लेटे हुए भी टकराते रहेंगे।

जीभ का सबसे बड़ा अवगुण है निन्दा

जिसकी जेब में धन है, उसकी जीभ नमकीन होती है और जिसकी जेब खाली है, उसकी जीभ पर शहद होता है। धन का आगमन या पलायन मनुष्य की जीभ के स्वास्थ्य व चपलता पर प्रभाव डालता है। अचानक बड़ा नुकसान हो जाये तो जीभ सूखने व लड़खड़ाने लगती है और यदि अचानक बड़ी पूंजी हाथ लग जाये तो जीभ की तरावट तो बढ़ती ही है, इसकी चपलता व सजगता भी बढ़ जाती है। एक बार एक भिखारी की पचास लाख रुपये की लॉटरी खुल गई थी तो उसकी झुकी पीठ सीधी हो गई, आँखों की रोशनी बढ़ गई और दयनीय आवाज़ कड़क आवाज में बदल गई। निर्धन में धैर्य का गुण होता है परंतु संपन्न व्यक्ति हमेशा अधीर रहता है। यह अधीरता उसकी जीभ को कुछ ज्यादा ही चलायमान रखती है। धैर्य से सहनशक्ति का गुण स्वत: आता है। धैर्य पुरुष का विशेष आभूषण है और शील नारी का। परंतु सहनशीलता, नर-नारी दोनों का गुण है। अति वाचाल जीभ से आत्मा अपने गुणों को खोती जाती है और अवगुणों को धारण करती जाती है। जीभ के माध्यम से प्राप्त सबसे बड़ा अवगुण है 'निन्दा'। ऐसा मनुष्य दूसरों की अच्छाइयों को घटा कर बतलाता है और बुराइयों को बढ़ाकर। परंतु ऐसा मनुष्य आध्यात्मिक पुरुषार्थी के लिए वरदान है क्योंकि उसकी आलोचना से पुरुषार्थी के पुरुषार्थ की जांच हो जाती है।

(क्रमशः)

मैं डिप्रेशन से बाहर आ गया

• **ब्रह्माकुमार संजीव कपूर, लखनऊ**

जून, 1995 की दोपहर में डेढ़ बजे का समय था, उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ के हजरतगंज क्षेत्र के पीछे बने एक बगीचे में बैठकर मैं ज़ोर-ज़ोर से रोते हुए, ऊपर नीले गगन की तरफ मुँह करके कह रहा था, 'यदि इस दुनिया को चलाने वाली कोई शक्ति हो तो उसका चाहे जो भी रूप हो, जो भी नाम हो, या तो मुझे ठीक कर दे या मुझे इस संसार से उठा ले, मैं अब इस ज़लालत की ज़िन्दगी से पूर्णतया ऊब गया हूँ और एक पल भी ज़िन्दा नहीं रहना चाहता हूँ।'

स्पष्ट आवाज़ आई ऊपर से

तभी ऊपर से एक स्पष्ट आवाज़ आई, 'अभी से हिम्मत हार गये, तुम्हें तो अभी बहुत कुछ करना है।' इस आवाज़ ने जैसे जादू का काम किया और मैंने अपने अंदर असीम शक्ति का संचार होते हुए महसूस किया। जिस समय मैं रो रहा था, उस समय तक लगभग पूरे छह महीने मुझे रात-दिन जागते हुए हो गये थे। मेरी मानसिक हालत बिल्कुल विक्षिप्त जैसी एवं शारीरिक हालत अत्यंत जीर्ण-शीर्ण थी। गालों में गड्ढे, आँखें अंदर तक धँसी हुईं, बोलते समय हाँफने लग जाता था, चलने में चक्कर-सा आने लगता था। अत्यन्त अवसाद (डिप्रेशन) एवं तमाम प्रकार की शारीरिक व्याधियों से मैं ग्रसित था।

तनाव बदल गया मानसिक अवसाद में

डिप्रेशन का कारण भी बड़ा अजीब था। सन् 1994 में मैंने दो-दो सामाजिक संस्थाओं से अपने आपको इतना गहरा जोड़ लिया कि दिन के 16-17 घंटे बस इन्हीं सामाजिक संस्थाओं के महामंत्री की हैसियत से अत्यधिक लिखा-पढ़ी का कार्य, प्रेस-विज्ञप्ति आदि तमाम कार्य करते हुए, बाकी सभी क्रिया-कलापों से अपने-आपको एकदम अलग-सा कर लिया। तनाव अत्यधिक बढ़ गया तो वो मानसिक अवसाद में बदल गया।

आत्महत्या के आने लगे ख्याल

एक से एक बड़े-बड़े डॉक्टरों जिनमें एलोपैथ, होम्यापैथ एवं आयुर्वेद शामिल थे, से मेरा इलाज हो चुका था। लगभग सारे डॉक्टर पेट के दर्द का इलाज कर रहे थे, मन को कोई समझ नहीं पा रहा था। इसी बीच लखनऊ मेडिकल कालेज के वरिष्ठ मानसिक रोग विशेषज्ञ से भी मेरा दिमागी इलाज प्रारंभ हुआ किन्तु चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा नज़र आ रहा था। उम्मीद की कोई किरण नहीं बची थी और आत्महत्या के ख्याल हर समय आते रहते थे। मौके की तलाश में था कि तभी शिव बाबा ने मुझे अपनी गोद में ले लिया।

बहनों के समझाने से बहुत बल मिला

जिस दिन मैं लखनऊ हजरतगंज ब्रह्माकुमारी सेन्टर पर पहुँचा, मेरी स्थिति एकदम पागलों जैसी थी। बड़ी दीदियाँ जब मुझसे बात करने का प्रयास करतीं तो मैं एकदम रोने लग जाता। फिर दीदियाँ बहुत समझातीं कि जो कुछ हो चुका है, उसे भूल जाइये। अब आपको बाबा ने अपनी गोद में ले लिया है, आप बिल्कुल ठीक हो जायेंगे। उनके इस प्रकार समझाने से मुझे बहुत बल मिला। हजरतगंज के पास ही मेरा कार्यालय है, प्रतिदिन लंच टाइम में मैं सेन्टर जाने लगा और यह नियम आज 12 साल बीतने के बाद भी जारी है। सुबह और शाम की क्लास अलीगंज सेवाकेन्द्र पर भी करने लगा।

न्यारा-प्यारा फ़रिश्तों जैसा जीवन

अमृतवेले बाबा की याद, मुरली क्लास, दीदियों की प्रेरणाएँ और राजयोग के निरंतर नवीन प्रयोगों के फलस्वरूप मेरी मानसिक और

(शेष.. पृष्ठ 22 पर)

भगवान का आदेश अंतिम सत्य

• प्रो.श्रीकांत नरगट्टे, हुपरी (कोल्हापुर)

कहा जाता है, योग द्वारा भगवान से वार्तालाप किया जा सकता है। इस बात पर शुरू में यकीन नहीं था लेकिन जैसे-जैसे ज्ञान मार्ग की यात्रा आगे बढ़ी, अनेकानेक दिव्य अनुभव होने लगे। उनमें से एक अनुभव का वर्णन कर रहा हूँ।

विचारधाराओं का संघर्ष

मुझे फरवरी 1990 में, माउंट आबू में, इंटरनेशनल कांफ्रेंस के दौरान ज्ञान प्राप्त हुआ। अलौकिक जीवन की यात्रा में अनेक नये-नये अनुभव होने लगे। मानवीय जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए इस ईश्वरीय ज्ञान का होना बहुत ही ज़रूरी लगा। भारतीय सेना से सेवानिवृत्त होने के बाद स्थानीय डी.एस.नाडगे कॉलेज में इतिहास का प्राध्यापक नियुक्त हो गया। सब कुछ ठीक-ठाक चलने लगा। लौकिक परिवार में पत्नी, दो बच्चे और माँ, हम पाँच प्राणी थे। ज्ञान में आए कुछ ही महीने हुए थे। परिवार में कभी-कभी अलग-अलग विचारधाराओं का संघर्ष होने लगा। धर्मपत्नी को यह ईश्वरीय ज्ञान नहीं भाया। नौबत यहाँ तक आ गई कि वह दोनों छोटे बच्चों को छोड़कर मायके चली गई। पाँच-छह साल गुजर गये लेकिन कोई समाधान नहीं हो पाया।

शिव बाबा से राय लेने का संकल्प

बच्चों को संभालना वृद्ध माँ को कठिन लगने लगा। मेरे लिए भी नौकरी, खेती और बच्चों की संभाल – सबमें संतुलन रखना मुश्किल होने लगा। दिनों-दिन तनाव बढ़ने लगा। रिश्तेदारों तथा कॉलेज के स्टाफ में चर्चा होने लगी और दूसरी शादी का प्रस्ताव सामने आने लगा, मुझे दूसरी शादी के लिए तैयार भी किया गया। एक अच्छी पढ़ी-लिखी, नौकरी करने वाली लड़की भी तैयार हो गई। मैंने भी हालात और तत्कालीन समस्याओं को देखकर अनुमति दे दी पर अंतर्मन कहता रहा कि जब पवित्र और आदर्श जीवन ही मेरा लक्ष्य है तो क्यों न इस बात पर फिर से विचार किया जाए। पर सच्ची सलाह कौन दे, यह प्रश्न सामने था। अंत में सोचा, चलो, बाबा की राय भी जान ली जाए। लेकिन परमात्मा तो निराकार है, वह कैसे राय दे सकता है?

अमृतवेले की चमत्कारिक अनुभूति

इस विषय पर मैंने अपने मित्र वरिष्ठ ब्रह्माकुमार वसंत भाई जी से वार्तालाप किया। उन्हें भी तरस आया। मुझे विश्वास था, भाई जी की सलाह सही हल निकाल देगी। उन्होंने इस संबंध में सभी अच्छे-बुरे परिणाम

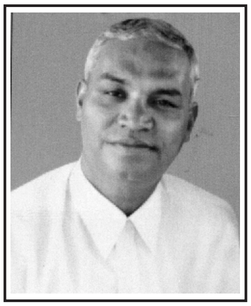

समझाये। फिर कहा, भाई जी, अंतिम राय तो बाबा से ही लें तो अच्छा होगा। उन्होंने एक बड़ी अच्छी युक्ति सुनाई, 'भाई, आप कुछ दिन अमृतवेले के समय इस विषय पर बाबा से वार्तालाप करें। इसके लिए स्थान एक हो, समय एक हो, विषय एक हो, फिर परिणाम आपको मिल ही जायेगा।'

भाई जी की इस सलाह के अनुसार हमने अमृतवेले की साधना आरंभ की। पाँच दिन, पंद्रह दिन, पच्चीस दिन बीत गये। कोई सही हल नहीं मिल पाया। लेकिन मुझे दृढ़ निश्चय था कि कुछ भी हो, बाबा का संकेत अंतिम सत्य समझ कर स्वीकार करना ही है। मुझे लगा कि बाबा मेरे जीवन की समस्या को देखकर मेरे लौकिक विचारों से अवश्य सहमत होंगे। अमृतवेले के योगाभ्यास का सत्ताइसवाँ दिन आया। सुबह चार बजे के बाद के 40 मिनट का समय मेरे लिए अद्भुत और भाग्यशाली सिद्ध हुआ। तीसरे नेत्र से बाबा ने ऐसा अद्भुत नज़ारा दिखाया,

जैसे कि शुरू में ब्रह्मा बाबा को तथा कई ब्रह्मावत्सों को विनाश और सतयुगी दुनिया का साक्षात्कार कराया था।

दृश्य इस प्रकार था –

एक ओर मुझे सजा-धजाकर बिठाया गया, सामने सुंदर प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर बगीचा, दूर से सफेद वस्त्रधारी बाबा मेरी ओर धीरे-धीरे आ रहा है, कुछ दूरी से कह रहा है, बच्चे, जिसका आपको इंतजार है वह घड़ी आ गई है, आपको हल चाहिए ना, तो देखो। मैंने देखा, दूसरी ओर से सफेद वस्त्रधारी परी समान नारी धीरे-धीरे ज़मीन पर पधार रही है, हाथ में लिपटे हुए कागज़ों का एक छोटा-सा बंडल लिए। वह सामने आकर खड़ी हो गई। सफेद वस्त्रधारी बाबा ने कहा, बच्चे, आपको अंतिम सहारा चाहिए ना, ले लो। उस सफेद वस्त्रधारी नारी ने सामने आकर लिपटे कागज़ों का पुलिंदा मेरे सुपुर्द कर दिया। मुझे लगा जैसे मैंने यूनिवर्सिटी से पढ़ाई का सर्टीफिकेट पार्सल द्वारा प्राप्त किया है। बाबा बोले, बच्चे, खोलकर देखो। मैंने खोला, बाबा की वाणी (मुरली) थी। फिर बाबा बोले, बच्चे, आपका अंतिम लक्ष्य और अंतिम सहारा यही है।

युगल से सुलह

यह दृश्य देखने के बाद मुझे पूरा निश्चय हो गया कि बाबा ने ही मेरे भावी जीवन की रूपरेखायें दिखाई हैं। मैंने उसे अंतिम सत्य समझकर जीवन का नया मार्ग अपनाया और दूसरी शादी का प्रस्ताव रद्द कर दिया। इस दृश्य से मुझे बहुत कुछ सहन करने की ताकत मिली। लोग मेरी अलौकिक विचारधारा से द्वेष, ईर्ष्या किया करते थे, वे सभी धीरे-धीरे करीब आने लगे। स्वयं मेरी धर्मपत्नी भी ज्ञान की बातों को बहुत करीब से महसूस करने लगी। उन्हें ईश्वरीय ज्ञान का महत्त्व और ताकत अनुभव होने लगी। वह लौटकर हमारे पास आ गई। अब हम दोनों ज्ञान का भरपूर लाभ उठा रहे हैं। ईश्वरीय सेवा का खूब आनंद ले रहे हैं। युगल के ज्ञान में आने के बाद सभी लोग ज्ञान की खूब तारीफ कर रहे हैं। वह स्वयं भी बाबा से प्राप्त किये हुए अनुभव सुनाती रहती है।

यदि मैं माया के जाल में आकर, समस्या से भयभीत होकर दूसरी शादी करता तो पता नहीं जीवन का नाटक किस मोड़ पर ले जाता। दुनिया की हालत को भली-भाँति समझते हुए, अग्नि की खाई में गिरने से बाबा ने बचा लिया। तब से हर दिन, बाबा के वरदानों की विलक्षण प्राप्तियों का अनुभव कर रहा हूँ। इन सारी सफलताओं के लिए परम प्यारे शिव बाबा के साथ-साथ प्रेरणास्त्रोत निमित्त बहनों तथा भाइयों को विनम्र अभिवादन और धन्यवाद! ❖

मैं डिप्रेशन से..पृष्ठ 20 का शेष

शारीरिक स्थिति में ज़बर्दस्त सुधार हुआ। धीरे-धीरे करके मैंने सारी दवाइयाँ बंद कर दीं। जो नींद मुझसे महीनों से रूठ गई थी वो भी आने लगी। राजयोग के अभ्यास तथा ईश्वरीय ज्ञान की क्लास के फलस्वरूप दो साल में मैं डिप्रेशन से पूर्णतया बाहर निकल आया और अब एक बहुत ही निराली तथा प्यारी ज़िन्दगी जी रहा हूँ। बिल्कुल फ़रिश्तों जैसा जीवन है। खुद भी उड़ता रहता हूँ और दूसरों को भी उड़ाता रहता हूँ। हर समय ऐसा लगता रहता है जैसे कि बाबा मेरे अंग-संग हैं और बाबा से निरंतर चिटचैट होती रहती है। खास अमृतवेले तो बाबा के साथ विश्व के पाँचों महाद्वीपों का चक्कर लगाकर पूरे संसार को लाइट-माइट देने की और प्रकृति को पावन बनाने की सेवा चल रही है। अब दिल यही गुनगुनाता रहता है –

बनाया प्रभु ने है अपना, दिया सुख हमें है कितना
न इतने तारे अंबर में, न सागर में है जल इतना।

मुझे साथी मिल गया

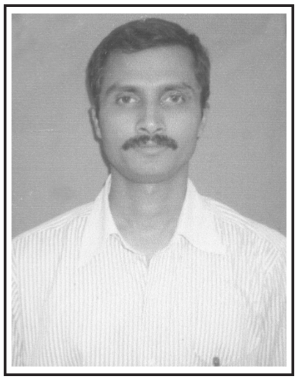

• बीजू जॉन जेकब, जबलपुर

बाबा का बनने के बाद, बाबा के साथ का अनुभव लगभग हर बच्चे को होता है। साथ का एक विशेष अनुभव सबके साथ बाँटना चाहता हूँ –

मुझे सरकारी नौकरी करते बीस साल पूरे हो गये थे और आगे प्रमोशन हेतु चार महीनों की इंटरमीडियट ट्रेनिंग करनी अनिवार्य थी। नवंबर 2009 में मुझे, पूना में ट्रेनिंग लेने के लिए जबलपुर से कार्यमुक्त किया गया। पूरे भारत से 25 साथियों के साथ ट्रेनिंग शुरू हुई। ट्रेनिंग बहुत कठिन थी। Calculus, Dynamic Meteorology, Statistics, Physics, Physical Meteorology जैसे विषयों पर सुबह 9.30 से शाम 6 बजे तक लैक्चर होते थे।

मुझे छोड़कर लगभग सभी एम.एस.सी. या बी.एस.सी. स्नातक थे। मैं बी.कॉम. स्नातक था इसलिए मेरे लिए औरों से ज्यादा कठिन थी ट्रेनिंग। जैसे-जैसे कोर्स आगे बढ़ता गया, सभी तनाव महसूस करने लगे। घर से दूरी एवं उम्र के हिसाब से 40 पार – इस कारण लगभग सभी कठिनाई महसूस कर रहे थे। तीन कर्मचारियों की तबीयत खराब हो गई और ट्रेनिंग अधूरी छोड़ उन्हें वापस जाना पड़ा।

मैं जबलपुर से पुरानी मुरलियों का सेट लेकर गया था। रोज़ अमृतवेले बाबा से योग लगाता और बाबा को कहता, इस अनजान शहर में आप ही मेरे साथी हो। मुझे दिन-भर ऐसा लगता कि क्लास में बाबा मेरे साथ हैं। मुरली भी ऐसी होती कि उस दिन जो होने वाला होता, वह बाबा मुझे मुरली द्वारा बता देते, उदाहरण के लिए, एक दिन अमृतवेले मुरली में पढ़ा कि दुखी-अशान्त आत्माओं को शान्ति का दान देना है। उसी दिन सुबह 5.30 बजे मेरे दरवाजे पर आहट हुई और एक साथी कर्मचारी खड़ा मिला, बोला, मुझे बहुत अशान्ति हो रही है, योग सिखाओ। मैंने बाबा से सीखे हुए योग अनुसार उसे सिखाया। उसे शान्ति का अनुभव हुआ।

खान-पान भी एक चुनौती थी। दोपहर को कैंटीन से सादी दाल और चावल मिल जाता था। सुबह-शाम फल खा लेता था। मध्यावधि परीक्षा दिसंबर में संपन्न हुई तो मुझे सबसे अधिक अंक मिले। सभी साथियों को बहुत उत्सुकता थी कि बी.कॉम. होते हुए भी विज्ञान के विषयों में टॉप कैसे कर सका। मैंने कहा, यह राजयोग का कमाल है। फिर तो मुझसे राजयोग सीखने के लिए कई कर्मचारी तैयार हो गये। दो लोगों को स्थानीय गीता पाठशाला में कोर्स पूरा करवाया। कई लोगों को क्लास में एवं अपने छात्रावास में योग का अनुभव कराया। उनमें से कुछ लोगों के परीक्षा में अच्छे नंबर आने से योग के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण बढ़ा। ईश्वरीय विश्व विद्यालय का परिचय सभी छात्रों और कुछ टीचरों को भी मिला।

अकेले में मैं बाबा को दोस्त बनाकर बातें करता। कुछ बातों के लिए जिद्द भी करता था, कहता था, बाबा, परीक्षा हॉल में आपको मेरे साथ रहना है। इंटरव्यू में भी बाबा को हक के साथ बोला, आपको साथ में चलना है। मुझे बाबा का सच्चा साथ मिला और अकेलापन बिल्कुल भी नहीं लगा।

मार्च 2010 में ट्रेनिंग सफलतापूर्वक पूरी हुई तो दिल में बाबा के लिए प्रेम और धन्यवाद के भाव महसूस कर रहा था। ट्रेनिंग के इन चार महीनों में बाबा के साथ का जो अनुभव हुआ, वह आजीवन याद रहेगा। ❖

भक्ति पूरी हुई, सच्चा ज्ञान मिला

• **ब्रह्माकुमार शिवकान्त मिश्रा, कोटकपूरा (पंजाब)**

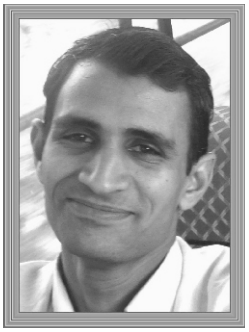

मेरा लौकिक जन्म धार्मिक ब्राह्मण परिवार में हुआ। छोटी आयु में ही मेरी भक्ति आरंभ हो गई थी। देशी घी की ज्योति जलाकर, हाथ जोड़कर उसको निहारना अच्छा लगता था। उमर बढ़ने के साथ-साथ भक्ति भी बढ़ती गई। एलर्जी की बीमारी के कारण बचपन से ही मेरी आँखें लाल रहती, पानी बहता रहता व दुखती रहती थी। एक ज्योतिषी ने मुझे आँखों को ठीक करने के लिए सवा लाख गायत्री मंत्र जपने को कहा, जो मैंने सहज स्वीकार कर लिया। आँखें तो ठीक नहीं हुई पर दुर्गा माँ का मैं परमभक्त बन गया। भक्ति करते भी मुझे सच्चे ज्ञान की तलाश थी। भगवान एक है लेकिन कौन? अगर सभी भगवान के ही रूप हैं, तो वो एक कौन है? एक तरफ उसको 'ऊपर वाला' कहते हैं, फिर कण-कण में भी कह देते हैं, ऐसा क्यों? अगर महादेव शंकर सबसे बड़े हैं तो वो खुद समाधि क्यों लगाते हैं? मुझे इन सभी प्रश्नों के उत्तर की तलाश थी।

अंतर्मन रहा प्यासा

बचपन में ही मुझे गहरा एहसास होता था कि इंसानों से पहले, इस धरती पर देवताओं का वास था। सपने में मुझे एक सुन्दर दुनिया भी नज़र आती थी। इस तरह 15 वर्ष की उम्र तक मैंने दिन-रात भक्ति की लेकिन अंतर्मन फिर भी प्रभु-प्रेम का प्यासा ही रहा। सन् 1997 में हमारा परिवार पंजाब में कोटकपूरा शहर में आ गया। यहाँ 10वीं कक्षा में मेरे एक ब्रह्माकुमार सहपाठी ने मुझे ब्रह्माकुमारी आश्रम जाने के लिए कहा। उसने कहा, वहाँ भगवान को याद किया जाता है। मैंने सोचा, शायद किसी अनाथ आश्रम की बात कर रहा होगा, वहाँ कोई प्रार्थना होती होगी, मैंने मना कर दिया।

देवी माँ के दर्शन

सन् 1998 के राखी के त्योहार के दिन सफेद कपड़े पहने वही भाई, तीन और भाइयों के साथ मुझे मिलने आया और कहा, आज तो आपको आश्रम ज़रूर लेकर जायेंगे। मैं उनका मान रखने के लिए, मम्मी से छुट्टी लेकर चल पड़ा। जैसे ही आश्रम के नज़दीक पहुँचा तो ऐसे लगा जैसे कि मेरा शरीर बहुत हल्का हो गया है और जब अपना कदम आश्रम के दरवाजे पर रखा तो शरीर का भान ही खत्म हो गया मानो किसी दूसरे लोक में पहुँच गया हूँ। अंदर देखा कि एक बड़े हाल में सफेद वस्त्र धारण किए फ़रिश्तों जैसी सभा है। सामने देखा तो चैतन्य में अष्टभुजा दुर्गा देवी उन फ़रिश्तों को राखी बाँध रही है। मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। फिर मन में संकल्प आया कि मेरी भक्ति से प्रसन्न होकर दुर्गा माँ मुझे साक्षात् दर्शन करा रही हैं। मैं अपलक उस देवी माँ को निहारता रहा। फिर उस चैतन्य दुर्गा माँ ने मुझे भी राखी बाँधी और वरदानी बोल बोले, 'आप बहुत लक्की आत्मा हो।' ये शब्द जैसे मेरे अंतर्मन में घर कर गये और मुझे अपने भाग्य पर गर्व होने लगा। थोड़ी देर बाद मेरी दृष्टि सामने लगे बाबा के ट्रांसलाइट के चित्र पर पड़ी, ऐसा लगा मानो किसी दिव्य शक्ति ने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया। मैं ब्रह्मा बाबा की आँखों में आँखें डाल देखता रहा जैसे कि इनके साथ मेरा बहुत जन्मों का गहरा रिश्ता है। फिर एक भाई ने मुझे वहाँ लगी ज्ञान के चित्रों की प्रदर्शनी समझाई, मुझे लगा कि जिस ज्ञान की बचपन से तलाश थी, वो मिल गया, यही तो परमात्मा का सच्चा ज्ञान है। फिर खुशी में नाचता हुआ घर गया और मम्मी को जाकर बताया कि मुझे सच्चा ज्ञान मिल गया है।

अनगिनत फायदे मिले ईश्वरीय ज्ञान से

जिस मोहल्ले में हमने किराये पर

मकान लिया था, वहाँ ब्रह्माकुमारीज़ के बारे में बहुत ही ग़लत भ्राँतियाँ फैली हुई थीं। जब पड़ोसियों को पता चला कि यह वहाँ जाता है तो उन्होंने मेरे माता-पिता के कान भर दिये, कहा कि यह वहाँ जायेगा तो घर-बार छोड़ देगा आदि-आदि। पर जिसको स्वयं भगवान ने अपना बना लिया हो और बचपन की प्रभु-मिलन की प्यास एक दृष्टि में बुझा दी हो, उसे भला अमृत-पान करने से कौन रोक सकता है! हालाँकि मैंने अभी सात दिन का ज्ञान का कोर्स भी पूरा नहीं किया था पर अंतरात्मा ने सच्ची शान्ति अनुभव कर ली थी। दिल और दिमाग ने प्रभु को पहचान लिया था। **समाज में बहुत-से लोग लोक-लाज के कारण प्रभु-मिलन के सच्चे सुख से वंचित रह जाते हैं। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि यह लोक-लाज केवल ईश्वरीय मार्ग में ही बाधा बनती है। कई ऐसे कर्म भी हैं जिनको करने में लोक-लाज आनी चाहिए पर उन्हें तो मानव धड़ल्ले से कर लेता है। विचार कीजिए, अपशब्द बोलना, गुस्सा करना, लोभ-मोहवश होना, कुदृष्टि रखना, शराब, तंबाकू का सेवन करना – वास्तव में तो शर्म इनको करने में आनी चाहिए। ईश्वर का बनने में, उसकी ओर कदम बढ़ाने में कैसी शर्म! लेकिन ग़लत संगत में पड़े बच्चों को देख समाज आँखें बंद कर लेता है और अच्छे मार्ग पर जाते व्यक्ति को देख समाज चिन्तित हो उठता है।** मैंने समाज से डरकर इस मार्ग को नहीं छोड़ा क्योंकि इस मार्ग पर चलकर मुझे अनगिनत फायदे हुए। फिर मैंने युक्ति से जाकर ज्ञान का कोर्स शुरू किया तो एक-एक ज्ञान की बात जैसे कि दिल की गहराई में उतरने लगी और उसे व्यवहारिक जीवन में अमल करना शुरू किया।

विरोधों का सामना

मुझमें क्रोध का संस्कार बहुत ज्यादा था। लेकिन जैसे ही ज्ञान का कोर्स किया, मैंने स्वयं को पहचान लिया कि मैं शान्ति के सागर की संतान शान्त स्वरूप आत्मा हूँ। शान्ति की अनुभूति होते ही क्रोध का संस्कार अंत:करण से विदाई ले गया। मेरा यह बदलाव मेरे भाई-बहनों को बहुत अच्छा लगा लेकिन **आज का समाज विवेक की आँखों पर मानो पट्टी बाँधे हुए है। अच्छी बातें उसकी बुद्धि से वैसे ही फिसल जाती हैं जैसे चिकने घड़े पर से पानी। वह इतिहास-पुराणों के महान लोगों के गीत गाता है पर जब उसके सामने कोई अच्छा बनने लगता है तो टांग भी खूब अड़ाई जाती है। समाज की इस प्रवृत्ति के कारण, दो-तीन वर्ष तक मुझे बहुत विरोधों का सामना करना पड़ा।** पर खुदा दोस्त की मदद मुझे युक्ति से इन बंधनों पर विजय दिलाती रही। मैंने सुन रखा था, लगन की अग्नि विघ्नों को समाप्त कर देती है। मैंने अपनी परमात्म याद की लगन को अग्नि रूप दे दिया। सारा दिन बाबा को याद करता रहता। कभी-कभी तो उसकी याद में आँसू भी आ जाते कि हे भगवान, आप इतने वर्षों के बाद मिले तो भी यह दुनिया आपका सच्चा ज्ञान सुनने नहीं देती है।

'मैं तेरे साथ हूँ'

मेरा मन प्रभु-प्रेम से हटाने के लिए कई प्रयोग किये गये। मेरे पर पहरा लगा दिया गया। एक डॉक्टर ने सलाह दी कि इसको करंट के एक-दो शॉक दे देते हैं, इससे इसका ब्रेन ठीक हो जायेगा पर इसमें इसकी संपूर्ण याददाश्त जाने का खतरा है। जब मेरे से इस बारे में बात की गई **तो मैंने कहा, आज़मा कर देख लो। मीरा के लिए भी तो ज़हर का प्याला अमृत हो गया था, मैं शरीर छोड़ सकता हूँ लेकिन हाथ आए भगवान को नहीं।** पर ऐसा कुछ नहीं किया गया। मेरी ईश्वरीय लगन को छुड़ाने के लिए मुझे पैतृक गाँव में पढ़ाई के लिए भेजने की योजना बनाई गई, वहाँ 35 कि.मी. तक कोई आश्रम नहीं था। लेकिन प्रभु की मदद ऐसी रही कि दाखिले के समय परिवार वालों का मन बदल गया, मुझे गाँव में पढ़ाने की योजना धरी की धरी रह गई। फिर उन्होंने मुझे ऋद्धि-सिद्धि जानने वाले चाचाजी के पास चार-पाँच मास के लिए छोड़ दिया और कहा कि आप इसकी बुद्धि बदल दो ताकि इसके सिर से ज्ञान का भूत उतर जाए। एक बार तो मुझे डर लगा क्योंकि तब तक ज्ञान-योग की इतनी परिपक्वता नहीं आई थी। जब रात को

सभी सो जाते तो मैं बैठकर बाबा (भगवान) से बातें करता कि बाबा, मैं अकेला पड़ गया हूँ, सभी मेरे खिलाफ हैं। उस समय मुझे एहसास होता कि सर्वशक्तिवान बाबा मुझमें अपनी सारी शक्तियाँ भर रहे हैं और कह रहे हैं कि जब तक मैं तेरे साथ हूँ, संसार की कोई शक्ति बाल बांका नहीं कर सकती। फिर तो मेरा सारा डर खत्म हो गया।

यह दिव्य आत्मा है

एक बार मेरे चाचा ने मुझे प्रभावित करने के लिए ऋद्धि-सिद्धि के चमत्कार भी दिखाये परंतु मैंने कहा, चमत्कार कोई बड़ी बात नहीं है, इससे हम किसी को प्रभावित तो कर सकते हैं परंतु मन की सच्ची शान्ति व सच्चा सुख नहीं प्राप्त कर सकते। सच्ची शान्ति व सच्चा सुख प्रभु को सत्य रूप में पहचान कर, उसके साथ आत्मिक संबंध जोड़ने से ही प्राप्त हो सकता है। कुछ दिनों बाद चाचाजी ने मुझे बताया कि मैंने तुम्हारी बुद्धि को बदलने के लिए अर्जी लगाई थी परंतु **मेरे गुरुजी ने सम्मुख प्रकट होकर कहा कि इसके मार्ग में नहीं आओ, यह एक दिव्य आत्मा है और सही मार्ग पर है। प्यारे बाबा ने उसको मेरे द्वारा प्रकाशमय रूप भी दिखाया, उन्होंने ऐसा बताया।**

योग के सुन्दर अनुभव

एक बार मैंने बाबा को कहा, बाबा, मैं बहुत बंधनों में हूँ, मधुबन जाना तो दूर, आश्रम जाना भी मुश्किल है। **उस रात ब्रह्मा बाबा मेरे स्वप्न में आये और सारी रात मुझे अंगुली पकड़कर मधुबन घुमाया। अगली रात फिर स्वप्न में अव्यक्त बापदादा आये और दृष्टि देकर टोली दी। एक दिन दोपहर विश्राम के बाद मैंने जैसे ही आँखें खोलीं तो जैसे सारा कमरा लाल प्रकाश से भरा हुआ था और एक बहुत ही तेजोमय ज्योति मेरी आँखों के सामने किरणें बिखेर रही थी। ऐसा 10 सेकंड के लिए हुआ पर उस शक्ति का अनुभव अगले दिन तक रहा। एक बार बाबा को भोग स्वीकार कराने बैठा तो ऐसा महसूस हुआ जैसे कि आत्मा ने शरीर छोड़ दिया है और ऊपर जा रही है। लगभग बीस मिनट बाद मम्मी ने आवाज़ लगाई तो ऐसे लगा जैसे कोई नीचे से आवाज मार रहा है और आत्मा ने शरीर में प्रवेश कर लिया। ऐसे कई अनुभव बाबा ने मुझे कराये जिससे योग की लगन अधिक बढ़ती गई।**

बाबा ने मुझे नया जीवन दिया

मैं कोटकपूरा से फरीदकोट पढ़ने के लिए प्रतिदिन जिस बस द्वारा जाता था, उसमें चढ़ने से मुझे किसी ने (बाबा की टचिंग ने) ज़बरदस्ती रोक लिया। मैं बाद में आई एक अन्य बस में बैठा। आगे जाकर देखा कि पहले वाली बस दुर्घटनाग्रस्त हो गई है। दुर्घटना में, आगे बैठे चार-पाँच की तुरंत मौत हो गई, कई गंभीर रूप से घायल हो गये। मैं भी हमेशा बस में आगे ही बैठता था। यह दुखदायी दृश्य देख मेरी आँखों में बाबा के प्रति प्यार के आँसू आ गये। मैंने कहा, बाबा, इस दुर्घटना से मुझे बचाकर मानो आपने मुझे नया शरीर दिया है। अब मुझे आपसे मिलने से कोई नहीं रोक सकता। उसी समय जैसे एक नई शक्ति ने शरीर में प्रवेश किया। आँखों की एलर्जी भी बाबा से दृष्टि लेते-लेते ठीक हो गई। अब तो शिवबाबा की लाइट की ओर देखने से भी पानी नहीं आता है और आँखें भी ठीक रहने लगी हैं।

यह कभी भूखा नहीं मर सकता

वह समय भी आया जब युक्ति से सारे बंधन खत्म हो गये। अब मैं सुबह-शाम आश्रम में ज्ञानामृत पान के लिए जाता हूँ। अव्यक्त बापदादा से कई बार मधुर मिलन मना चुका हूँ। परिवार के सभी सदस्य सहयोगी हैं और मेरे इस पवित्र जीवन को अब पसंद करते हैं। मेरे दादा जी, पहले मेरे पापा को कहते थे, आप समझ लो कि आपका यह बच्चा मर चुका है। अब कहते हैं, मेरे सभी पौत्रों में यह ही सबसे अच्छा है। पहले मेरे पापा कहते थे, यह ब्रह्माकुमारियों के पीछे लगा है इसलिए कहीं का नहीं रहेगा, कमाकर भी नहीं खायेगा। अब मैं खुद का कंप्यूटर सेन्टर चलाता हूँ और घर की सारी ज़िम्मेवारियाँ संभालता हूँ। अब पापा कहते हैं, यह कभी भूखा नहीं मर सकता। इस तरह भगवान ने भक्ति स्वीकार की और उसके सच्चे फल के रूप में स्वयं ही मुझे मिल गये। ❖

चश्मा पहनो, चमत्कार देखो

• ब्रह्माकुमार विनायक, आबू पर्वत

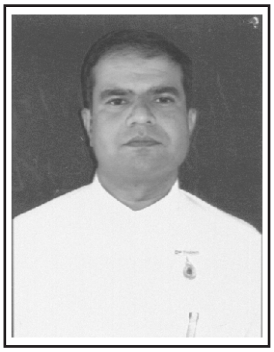

मानव का सहज स्वभाव है कि वह जो भी साधना करता है, उसमें तीव्र गति से आगे बढ़कर कम समय में अधिक सफलता पाकर मंज़िल पर पहुँचना चाहता है। परमपिता, परमशिक्षक, परमसद्गुरु, संपूर्ण ज्ञान, सर्वगुण और शक्तियों के सागर परमात्मा शिव की श्रीमतानुसार चलते हुए, हम भी तीव्र गति से पुरुषार्थ कर मनुष्य से देवता बनने के लक्ष्य को शीघ्र संपन्न करने के लिए योजनायें बनाते रहते हैं। अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि तीव्र पुरुषार्थ करना चाहते हुए, प्रयत्न करते हुए, योजना बनाते हुए भी जितनी तीव्रता चाहिए उतनी नहीं ला पाते, क्यों?

विघ्न है अवगुण देखना

कुछ लोग समझते हैं कि इसका कारण विघ्न या परिस्थितियाँ हैं। लेकिन सोचने की बात है कि पुरुषार्थ का अर्थ ही है विघ्नों पर विजय पाना, असंभव को संभव बनाना। तो यह सवाल ही नहीं उठता कि वे हमें निर्बल बनाएँ। इसलिए ही भगवान शिव कहते हैं, विघ्न लगन का साधन हैं। मानव इतिहास में एक भी ऐसा प्रसिद्ध पुरुष नहीं है जिसने बगैर विघ्न के सफलता पाई हो। इसलिए विघ्न को पुरुषार्थहीनता का कारण बनाना उचित नहीं है। फिर ऐसा कौन-सा कारण हो सकता है जो हमें उड़ने से, परमात्म प्यार में लवलीन होने से, सर्व खज़ानों को अपने में समाकर मालामाल होने से रोक रहा है। जब हम एकांत में बैठ, अंतर्मुखी होकर, परखने और निर्णय करने की शक्ति का संपूर्ण प्रयोग कर, अंतर्मन का उत्खनन करेंगे तो उत्तर स्पष्ट दिखाई देगा कि पुरुषार्थहीनता का कारण कोई विघ्न नहीं बल्कि हमारा ही एक अवगुण है और वह है, दूसरों के, उनमें भी जो निकट संबंध-संपर्क में हैं उनके अवगुण और कमी-कमज़ोरी देखना। सिर्फ देखना ही नहीं, उनको ग्रहण करना, वर्णन करना, उनसे आश्चर्यचकित होना, उस व्यक्ति से तंग होकर अंदर ही अंदर विरोध, नफरत, घृणा के संकल्पों को उत्पन्न करके परेशान होना और इस परदर्शन में ही समय, संकल्प, शक्ति को व्यर्थ गंवाते रहना, यह है तीव्रता को रोकने का मुख्य कारण।

अवगुण देखना माना आत्मा को ग्रहण लगना

कुछ लोग कहते हैं, हम तो काम, क्रोध, मोह, लोभ जैसे बड़े-बड़े विकारों का त्याग कर चुके हैं। औरों को देखने की आदत तो बहुत ही छोटी है, यह कैसे हमें रोक सकती है? लेकिन यह कहना हमारी परखने की शक्ति की कमज़ोरी को प्रदर्शित करता है। जैसे ज्योतिषशास्त्र में कहा गया है कि सौर वर्ष में सबसे अशुभ समय है ग्रहणकाल। वे कहते हैं, सूर्य, इस धरती पर रहने वाले सर्व जीव जगत के जीवन का आधार है। सूर्य की रोशनी से धरती को वंचित करना, अशुभ और भविष्य में आने वाली आपदाओं का सूचक है। ग्रहण अल्पकाल का है तो भी उसका प्रभाव बहुतकाल तक रहता है। वैसे ही, ज्ञान सूर्य भगवान शिव, सर्व मनुष्यात्माओं के भाग्यविधाता हैं। जैसे सूर्य और धरती का संबंध रोशनी द्वारा जुड़ता है, वैसे ही आत्मा का परमात्मा के साथ संबंध मन और बुद्धि द्वारा जुड़ता है। मन और बुद्धि में

अगर किसी अन्य आत्मा के अवगुण की स्मृति प्रवेश करे और ज्ञान सूर्य की रोशनी से आत्मा को वंचित करे तो क्या यह छोटी बात है? यह ग्रहण तो उससे भी अति खतरनाक है और आपदा का सूचक भी है।

अवगुण दर्शन से विकारों का विस्फोट

सबसे बड़ी आपदा तो यह है कि संगमयुग का अति अमूल्य खज़ाना समय, जो परचिंतन में व्यर्थ गया, उसमें से एक क्षण भी हमें वापस मिलने वाला नहीं है। दूसरी बात है, अवगुण देखना, यह विकार तो नहीं है लेकिन विकारों का जनक है। जैसे डाइनामाइट (Dynamite) का विस्फोट करने के लिए डिटोनेटर (Detonator) का इस्तेमाल किया जाता है। हम जिसको चिंगारी दिखाते हैं वह तो सिर्फ एक बत्ती है लेकिन आगे जाकर कुछ समय के बाद बारूद का विस्फोट कर देती है। यह विस्फोट चट्टानों को भी तोड़ देता है। वैसे ही अवगुण देखना भी एक बत्ती है जो समय आने पर विकारों के विस्फोट का कारण बन जाती है, विशेषकर क्रोध और अहंकार के विस्फोट का कारण। ऐसे भी कई उदाहरण हैं कि वे दूसरों के अवगुण देखकर खुद साधना के मार्ग से हट गए और फिर से विकारों के पंजे में फँसकर चकनाचूर हो गए। औरों को ऐसी नज़र से देखना माना ज्ञानसूर्य से विपरीत बुद्धि बनकर, सारे कल्प के लिए उनसे मिलने वाले सुख, शान्ति और संपत्ति के वर्से को लकीर लगा देना।

इस कमज़ोरी से मुक्ति कैसे पाएँ?

ज्ञानसागर शिवपिता ने बहुत ही सरल युक्ति समझाई है, मीठे बच्चे, हर एक की विशेषताओं को ही देखने का चश्मा पहनो। यह चश्मा पहनना अर्थात् हर एक की विशेषता को पहचानना, वर्णन करना, उसको अपने अंदर धारण करना और साथ-साथ अवगुण को देखते हुए भी नहीं देखना। यह चश्मा हमारी जेब में पहले से ही है। यह मानव को जन्मजात प्राप्त ईश्वरीय वरदान है और आश्चर्य की बात यह है कि दिन में कई बार हम इसको पहनते भी हैं व उतारते भी हैं।

मान लीजिए, हम कुछ प्रसिद्ध शहरों के दर्शनीय स्थलों को देखने जा रहे हैं। हमें मालूम है कि वहाँ ही आस-पास झोपड़पट्टियाँ, मांस-मदिरा का बाज़ार, कसाईखाना आदि भी हैं लेकिन न हम उनके बारे में सोचेंगे, न देखेंगे, न वहाँ जाकर परेशान होंगे।

जब हम गुलाब के फूलों का बगीचा देखने गए, फूलों से जुड़े काँटों को देखकर हमारे मन में नफरत पैदा हुई क्या? क्या यह सोचा कि दोबारा नहीं आना? नहीं ना। आपकी नज़र में सिर्फ फूलों का सौन्दर्य और श्वास में उनकी खुशबू थी। वहाँ कांटे भी थे लेकिन विशेषता को देखने के चश्मे में वे दिखाई नहीं दिए।

अखबार में अश्लील कथाएँ, चित्र आदि भी होते हैं पर हम ज़रूरी खबर या काम में आने वाली जानकारी पर नज़र डालकर उसका लाभ ले लेते हैं।

हमारे में से अनेकों के नाम शेरसिंह, प्रतापसिंह आदि हैं। सर्वप्राणियों में श्रेष्ठ बुद्धिजीवी मानव ने, अपने से नीच, बुद्धिहीन, मांसाहारी, क्रूर प्राणी सिंह का नाम अपने साथ क्यों जोड़ा? क्योंकि उसके अवगुण को ना देख, विशेषता अर्थात् साहस और गंभीरता को ही देखा और स्वयं की शान बढ़ाने के लिए अपने नाम के साथ 'सिंह' जोड़ दिया।

इससे सिद्ध होता है कि शुद्ध-अशुद्ध दोनों परखकर, शुद्ध या प्रयोजनकारी को ही स्वीकार कर, अशुद्धि की तरफ ध्यान नहीं देना, यह कला हमारे पास पहले से ही है। लेकिन हम असफल इसलिए हो जाते

हैं जो वस्तुओं को देखते वक्त पहने हुए चश्मे को, व्यक्तियों के संबंध-संपर्क में आते ही उतार देते हैं। अब पुरुषार्थ में तीव्रता लाने के लिए हमें सिर्फ इतना ही कष्ट उठाना होगा कि व्यक्तियों के संबंध-संपर्क में रहते भी इस चश्मे को पहन कर रखना है।

चश्मा उतर न जाए, इसके लिए क्या करें –

❖ दूसरों के अवगुण की तरफ बुद्धि तब जाती है जब अपनापन नहीं है। इसको जागृत करने के लिए सदा इस स्मृति में रहें कि हम सभी आत्मायें एक शिव पिता की संतान, आपस में भाई-भाई हैं।

❖ जब तक साक्षी दृष्टि नहीं है तब तक नज़र कहीं भी उलझती रहेगी। साक्षीद्रष्टा बनने के लिए इस बात की गहरी धारणा हो कि इस बेहद नाटक के हर दृश्य और हर एक पात्रधारी का पात्र पूर्व नियोजित है, एक का पात्र न मिले दूसरे से, इसलिए सभी निर्दोष हैं।

❖ सदा स्मृति रहे कि मैं पूर्वज आत्मा हूँ और मेरा मुख्य गुण है क्षमा। तब औरों की गलतियाँ बचपन का खेल लगेंगी।

चश्मे से चमत्कार क्या दिखाई देगा?

❖ चमत्कार यह होगा कि अब तक जिनका विकराल रूप देखकर हम नफरत करते थे, दुखी-परेशान होते थे उसी व्यक्ति का सुंदर रूप सामने प्रत्यक्ष होगा। जहाँ देखो, वहाँ गुण-विशेषता ही दिखाई देने के कारण यह सृष्टि एक सुंदर रचना लगेगी और मन हल्का होकर रचयिता शिवपिता की महिमा के गीत गाने लगेगा।

❖ मन-बुद्धि से देहधारियों की स्मृति और अवगुण, कमी-कमज़ोरी रूपी कांटे हट जाने के कारण पुरुषार्थ में अति तीव्रता आयेगी। अब तक जिसका अवगुण हमारे पुरुषार्थ में विघ्न भासता था, वह भ्रम हमेशा के लिए मिट जायेगा।

❖ औरों के गुण-विशेषता देखते-देखते वे हमारे अंदर धारण होने के कारण हमें सर्वगुणसंपन्न, सोलह कला संपूर्ण बनने में मदद मिलेगी।

❖ विशेषताओं का वर्णन करने से आपस में स्नेह-प्यार अंकुरित होकर परिवार की एकता मजबूत होगी और चारों तरफ हल्कापन, उमंग-उत्साह फैलेगा।

❖ दूसरों के अंदर छिपी हुई विशेषता को पहचानना, उसको ईश्वरीय सेवा में लगाने के लिए उनको प्रेरणा और मदद देकर उनका भी जीवन श्रेष्ठ बनाना, ऐसी अनोखी सेवा का मौका मिलेगा। ❖

पवित्रता का उपहार

बगदीराम मदेल, रतलाम

शिव बाबा से मिलन मनाना, ख्याल था दिल में
अभी तक मिल न पाया, मलाल था दिल में
कैसे मिलन मनाते हैं, सवाल था दिल में
मिलन कब मनाऊँगा, बेहाल था दिल में
शिव बाबा से मिलन मनाया बहुत प्यार मिला है
पवित्रता से रहने का स्वर्णिम उपहार मिला है।

पवित्रता क्या चीज़ है, समझ न पाया था
परिवार में रहकर सिर्फ, परिवार बढ़ाया था
पवित्रता का अर्थ केवल, नहाने से लगाया था
ब्रह्माकुमारी दीदी ने समझाया, तब समझ में आया था
अब खुद समझकर समझाने का आधार मिला है
पवित्रता से ....

स्वनियंत्रण स्वयं पर रखना ज़रूरी है
पवित्र रहकर त्याग का फल चखना ज़रूरी है
पवित्रता की बोई फसल पकना ज़रूरी है
सौ टंच शुद्ध सोना हैं हम, परखना ज़रूरी है
बार-बार शिव बाबा से मिलने का अधिकार मिला है
पवित्रता से ....

क्रोध पर विजय

• ब्रह्माकुमार किशनदत्त अनुदर्शी, शान्तिवन

क्रोध एक मनोविकार है, सुखी जीवन के लिए अभिशाप है। इस पर सम्पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए यह जानना होगा कि क्रोध क्या है? इस पर विजय पाना क्यों जरूरी है? इसके आने के कारण क्या-क्या हैं? इससे होने वाली हानियाँ क्या-क्या हैं और इस पर विजय प्राप्त करने के लिए उपाय क्या-क्या हैं?

क्रोध क्या है?

क्रोध और कुछ नहीं अपितु एक नकारात्मक भाव है। किसी क्रिया की यह आक्रामक प्रतिक्रिया मात्र है। इस प्रतिक्रिया के कारण शरीर के समूचे स्नायु-तन्त्र में आक्रामक भाव की तरंगें पैदा हो जाती हैं। यह प्रतिक्रिया स्व के अस्तित्व (आत्मा) की पूर्णतः विस्मृति की अवस्था में होती है। यह पूरी तरह बहिर्मुखी चेतना होती है जो हिंसात्मक होती है। क्रोध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा ही है। इस मानसिक अवस्था में आत्मा की बुद्धि किसी घटना, परिस्थिति, व्यक्ति या विचार से अत्यन्त सम्बद्ध हो जाती है इसलिए उसकी निर्णय शक्ति समाप्त हो जाती है।

क्रोध से हानियाँ

क्रोध से होने वाले परिणामों पर एक नजर डालें। क्रोध के प्रभाव से शरीर की अन्तःस्रावी प्रणाली पर बुरा असर पड़ता है। रोग प्रतिकारक शक्ति कम हो जाती है, हार्ट अटैक, सिर दर्द, कमर दर्द, मानसिक असन्तुलन जैसी अनेक बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं, परिवार में कलह-क्लेश, मारपीट होने से नारकीय वातावरण हो जाता है, सम्बन्ध विच्छेद हो जाते हैं, जीवन संघर्षों से भर जाता है तथा व्यक्ति का चरित्र खराब हो जाता है। क्रोध से शारीरिक व मानसिक रूप से अनेक प्रकार की हानियाँ ही हानियाँ हैं।

क्रोध के कारण

- जब कोई व्यक्ति इच्छा पूर्ति में बाधा डाले।
- आपसी व्यवहार में जब अपेक्षाएँ पूर्ण नहीं होती।
- अधिक समय तक चिन्ताग्रस्त रहने से।
- तामसिक और राजसिक आहार का सेवन करने से शारीरिक रसायनों का सन्तुलन बिगड़ता है। इसका मस्तिष्क पर बुरा असर पड़ता है और विचार ज्यादा चलने लगते हैं। इससे क्रोध के शीघ्र आने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।
- नींद से शारीरिक ऊर्जा के क्षय की पूर्ति होती है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाले हारमोन्स सन्तुलित रहते हैं। शरीर की सभी कोशिकाएँ तरोताजा हो जाती हैं। यदि अनुचित आहार, चिन्ता या अन्य किसी भी कारण से नींद गहरी नहीं होती है तब कोशिकाएँ ऊर्जावान नहीं रहती जिसके कारण शरीर में थकान बनी रहती है। फलस्वरूप, शरीर में गर्मी (खुश्की) बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में भी क्रोध आने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।
- किसी भी ज्ञात या अज्ञात कारण से यदि शरीर में पित्त की वृद्धि हो जाती है तब भी हारमोन्स असन्तुलित हो जाते हैं। नेगेटिव दृष्टिकोण के कारण भी पित्त (एसिड) में वृद्धि हो सकती है। पित्त वृद्धि के कारण स्वभाव चिड़चिड़ा या क्रोधपूर्ण हो जाता है।
- किसी स्थान के प्रकम्पन बहुत भारी या नेगेटिव हों तब भी क्रोध आता है।
- अधिक समय तक अस्वस्थ रहने से होने वाली शारीरिक व

मानसिक कमजोरी भी क्रोध आने का कारण बनती है।

- जिद्द के संस्कार, अपनी मान्यताओं से अत्यधिक सम्बद्धता, मैं ही ठीक हूँ, मेरी बात ही ठीक है, यह अपनी मनवाने की मानसिकता क्रोध का कारण बनती है।
- जब हम दूसरों को जबरदस्ती कन्ट्रोल करना चाहते हैं, तब भी क्रोध आता है।
- दूसरे की झूठ को सहन नहीं कर सकने पर क्रोध आता है।
- न्याय ना मिलने पर या अन्याय होने पर गुस्सा आता है।
- व्यर्थ की टीका-टिप्पणी पर क्रोध आता है।
- हार या असफलता होने पर, व्यापार में घाटा होने पर, निन्दा या अपमान होने पर, निराशा की स्थिति में क्रोध आने की सम्भावना बढ़ जाती है।
- खूब मेहनत करने पर भी जब कार्य सफल नहीं होता, तब गुस्सा आता है।
- कभी-कभी किसी एक व्यक्ति का क्रोध दूसरे पर थोप दिया जाता है। जैसे ऑफिस में बॉस पर क्रोध ना कर पाना और घर में बच्चों आदि पर क्रोध करना।
- अनुमान के वश होकर भी व्यक्ति क्रोध करता है।

क्रोध पर विजय प्राप्त करने के लिए ध्यान देने योग्य बातें

क्रोधजीत बनने के लिए आध्यात्मिक व व्यवहारिक समझ की आवश्यकता है। इस विश्व नाटक में हर आत्मा अपना पार्ट ठीक प्ले कर रही है। विकारों के वश अर्थात् परवश आत्मा के साथ क्रोध की प्रतिक्रिया का क्या औचित्य ?

स्वयं की शक्तियों को पहचान कर आत्म-निर्भरता में विश्वास करें। अनावश्यक अपेक्षाओं को मन में न पालें। अपने चिन्तन को श्रेष्ठ बनायें। आध्यात्मिक व्यक्तित्व की धनी आत्माएँ कभी चिन्ता नहीं करती अपितु एकाग्र चिन्तन करती हैं। आध्यात्मिक ज्ञान के मनन-मंथन से मानसिक विक्षिप्तता हो नहीं सकती। सात्विक आहार के महत्व को समझें और उसी का सेवन करें।

नींद की आवश्यकता शरीर की आयु के अनुसार कम-ज्यादा होती है। नींद का औसतन समय 5 से 6 घण्टे हो सकता है। नींद गहरी होनी चाहिए। इसके लिये काम और विश्राम (नींद) दोनों का सन्तुलन रखें। शारीरिक या बौद्धिक कार्य की थकान के बाद गहरी नींद आ सकती है। नींद की जितनी गहराई बढती है उतनी ही लम्बाई घटती है।

पॉजिटिव की अभिव्यक्ति में अवरोध पड़ने के कारण नेगेटिव का जन्म होता है। इसलिए दृष्टिकोण की नकारात्मकता एक अज्ञानता है। नकारात्मकता सकारात्मकता की अनुपस्थिति है। समय प्रति समय शारीरिक जाँच कराते रहें। स्वयं की प्रकृति की पूरी समझ रखें। स्वयं को प्रकृति से (शरीर से) अलग समझ प्रकृति के साथ सद्भाव रखें। दृष्टिकोण को ठीक ठहराने की जिद्द ना करते हुए स्वयं को शान्त रखें। अपनी दृष्टि का कोण बदल समाधान की भाषा में सोचें। दृष्टिकोण को बदलने से रेगिस्तान (मरुस्थल) में मरूद्यान का अनुभव किया जा सकता है।

किसी को भी जबर्दस्ती कन्ट्रोल नहीं किया जा सकता। आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की समझ से किसी को दिशा देना ही वास्तव में कन्ट्रोल करना है। फिर भी याद रखें, 100% ज़रूरी नहीं कि सभी हमारे कहने के अनुसार ही चलें।

याद रखें कि झूठ के पैर नहीं होते। अन्तिम विजय सत्य की ही होती है। इस विश्व नाटक में अन्याय में भी कहीं ना कहीं न्याय छिपा होता है। याद रखें कि ईश्वर के दरबार में देर हो सकती है लेकिन अन्धेर नहीं। 'साँच को आँच नहीं' इस सिद्धान्त

पर अटल रहें।

संसार में जितने प्रकार के लोग हैं उतने ही प्रकार के विचार हैं। प्रजातन्त्र राज्य में हर व्यक्ति अपने विचार देने या बोलने में स्वतन्त्र है। टीकाओं पर ध्यान ना देते हुए जो यथार्थ हो, उस मार्ग पर पूरे विश्वास के साथ अग्रसर रहें। कर्म सिद्धान्त के अनुसार मेहनत का फल आज या कल अवश्य ही मिलता है। कोई भी कर्म व्यर्थ नहीं जाता। श्रेष्ठ भावना रखकर धैर्य से कर्म करते रहें। जीवन के खेल में ऐसा कभी नहीं होता कि सदा सफलता ही होती रहे या सदा असफलता (हार) ही होती रहे। इसमें सुख-दुःख, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, हार-जीत, हानि-लाभ दोनों ही होते हैं। इसलिए असफलता में भी सफलता को तलाशने का स्वभाव बना लें।

किसी भी परिस्थिति में तुरन्त प्रतिक्रिया नहीं करने की आदत बना लें। व्यवहार में आत्मीयता है तो क्रोध की स्थिति ही पैदा नहीं होती। अपनेपन की भावना रख अनुमान, शंका, सन्देह से सदा दूर ही रहें। पारस्परिक विचारों और भावनाओं का सम्प्रेषण सही समय पर सही व्यक्ति के साथ करें। व्यर्थ और नकारात्मक भावनाओं को पनपने ही न दें। किसी भी बात को ज्यादा गम्भीरता से न लें। बातों को हल्के रूप से लेकर उनका निराकरण करें।

राजयोग के अभ्यास द्वारा

चिन्तन को यथार्थ और सकारात्मक बनायें। स्वयं से स्वयं ही बातें करें। मैं कौन हूँ ? मेरा यथार्थ परिचय क्या है? मैं किस स्थान पर हूँ? मेरे कर्त्तव्य क्या-क्या हैं? मुझे करना क्या है? अपनी महानताओं और सम्भावनाओं को याद करें। अन्तर्मुखी होकर अध्यात्म जगत की महानताओं के चित्रांकन द्वारा उन्हें यथार्थ रूप में महसूस करें।

आत्म-केन्द्रित हो, आत्म-ज्योति को मस्तक सिंहासन पर देखने का कम से कम 6 महीने तक लगातार अभ्यास करें।

परमात्म-ज्योति को देखते हुए उनके साथ भावनात्मक रूप से एकाकार (कम्बाइन्ड) होने का अभ्यास करें। यह अभ्यास भी कम से कम 6 महीने तक लगातार करें।

आत्मा के मूल गुण पवित्रता का चिन्तन और अनुभूति का लक्ष्य रखकर राजयोग का अभ्यास करें। बुद्धि रूपी नेत्र से देखना कि पवित्रता की सफेद किरणें मेरे सिर के ऊपर से उतर रही हैं और मैं आत्मा शीतलता का अनुभव कर रही हूँ। कम से कम 6 महीने तक दिन में 5 बार अभ्यास करें।

इस प्रकार यथार्थ बौद्धिक समझ और राजयोग के विधिपूर्वक अभ्यास के द्वारा क्रोध पर सम्पूर्ण विजय सम्भव है। ❖

ग्लोबल हॉस्पिटल में महत्त्वपूर्ण चिकित्सा सर्जरी कार्यक्रमों की जानकारी

घुटने व कूल्हे के जोड़ प्रत्यारोपण सर्जरी सुविधा
(Regular Knee and Hip Replacement Surgery)
दिनांक : 26 से 29 नवंबर, 2010
सर्जरी : डॉ. नारायण खण्डेलवाल, मुम्बई से कुशल व अनुभवी सर्जन
(Trained in U.K., Australia and Germany)
पूर्व जाँच के लिये केवल घुटने व कूल्हे के ऑपरेशन के इच्छुक रोगी संपर्क करें – डॉ. मुरलीधर शर्मा, ग्लोबल हॉस्पिटल, फोन नं. 09413240131
फोनः (02974) 238347/48/49 **वेबसाइटः** www.ghrc-abu.com
फैक्सः 238570 **ई-मेलः** drmurlidharsharma@gmail.com

ब्र.कु. आत्मप्रकाश, सम्पादक, ज्ञानामृत भवन, शान्तिवन, आबू रोड द्वारा सम्पादन तथा ओमशान्ति प्रिन्टिंग प्रेस, शान्तिवन -307510, आबू रोड में प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय के लिए छपवाया। संयुक्त सम्पादिका - ब्र.कु. उर्मिला, शान्तिवन
E-mail : omshantipress@bkivv.org Ph. No. : (02974) - 228125 atamprakash@bkivv.org